शीराज़ा

हिन्दी

जे. एंड के.
अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : 27 अंक : 5 दिसम्बर-जनवरी 1991

पूर्णांक : 111

प्रमुख सम्पादक
मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

सम्पादक
डॉ. उषा व्यास

संपर्क : सम्पादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ जम्मू।
फोन : 47643 : 49576
मूल्य : 2 रुपये वार्षिक : 10 रुपये

प्रकाशक : श्री मुहम्मद यूसुफ़ टेंग सेक्रेटरी, अकादमी आफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज
जम्मू 180001

प्रिंटर्ज : मैसर्स रोहिणी प्रिंटर्स कोट किशन चन्द जालन्धर—144004

इस अंक में—

☐ लेख

माखनलाल चतुर्वेदी की समीक्षा-दृष्टि	रवि रंजन	1
कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण—'रामावतार चरित'	डॉ० शिबन कृष्ण रैणा	5
उपेन्द्र रैणा और उनका 'आत्मदाह'	डॉ० निज़ामुद्दीन	11
नंग बड़े परमेश्वर से (व्यंग्य)	रामेश्वर कम्बोज 'हिमांशु'	19

☐ कविताएं

कभी-कभी/बचपन (दो उड़िया कविताएं)	डॉ० सीता कांत महापात्र अनु० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	22
गन्ध के निमन्त्रण/उपराम रहा मौसम (दो कविताएं)	'निर्मल' विनोद	26
अब कैसी हो डल झील तुम/नियति (दो कविताएं)	अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'	28
अभी फकत...!/लोग और लोग...!! (दो कवितायें)	बालमुकुन्द गर्ग	33

☐ कहानियां

कहने वाला कहता है	महाराज कृष्ण सन्तोषी	35
ज़िंदा संकेत मुर्दा संकेत	डॉ० रतनलाल शांत	40
रक्त और पाषाण	सत्यनाथ रमण	45
तपते दिनों में	आशा अरोड़ा	50
चुनी गई समस्या	हरदर्शन सहगल	54

☐ भाषांतर

एक और एक दो, दो और दो चार (पंजाबी कहानी)	डॉ० दिलीप कौर टिवाणा अनु० शांता ग्रोवर	58

☐ साक्षात्कार

शमशेर बहादुर सिंह से डॉ० देवव्रत जोशी की बातचीत		67

☐ किताबें

डोगरी-कश्मीरी कहानियां पर डॉ० ओंकार कौल की समीक्षा		70

लेख

माखनलाल चतुर्वेदी की समीक्षा-दृष्टि

□ रवि रंजन

समीक्षा का लक्ष्य समकालीन सर्जना के 'डायलेक्टिक्स' को पकड़ना होता है। सम-कालीन सर्जना में अपने परिवेश के साथ घात-प्रतिघात के परिणामस्वरूप जो अन्तःक्रिया घटित हो रही होती है, कुशल समीक्षक उसके सूत्रों को पकड़कर ही उस युग-विशेष में रचित विभिन्न कृतियों में प्रयुक्त कौशल का विश्लेषण कर पाता है। चूंकि प्रत्येक श्रेष्ठ रचना अपने-आप में एक नए संसार का सृजन करती है, इसलिए कुशल समीक्षक उसके मूल्यांकन-क्रम में समीक्षा के प्रचलित एवं परम्परागत मानदंडों की जगह नए निकष की खोज करता है जिसके नियम कृति-विशेष से ही निःसृत होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य की नवोत्पादित विधा होने के कारण समीक्षा की गतिविधि स्वभावतः रचना के साथ बदलती रहती है।

ऐसे तो प्रारंभ से लेकर अब तक साहित्य-विषयक समीक्षाएं विभिन्न अध्ययन-क्षेत्रों एवं ज्ञानधाराओं से जुड़े लोग लिखते रहे हैं जिनमें कुछ लोगों की समीक्षा को साहित्यालोचन का आदर्श भी माना गया है, किन्तु गंभीरतापूर्वक विचारने से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य विषयक सर्वश्रेष्ठ समीक्षण प्रायः ऐसे समीक्षकों द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सका है जिनके खुद का संबंध भी रचनात्मक लेखन से रहा है। कालरिज, अर्नाल्ड, एलियट के अलावा भारत में रवीन्द्रनाथ, निराला, दिनकर आदि महाकवियों ने जिन स्तरीय समीक्षात्मक मानदंडों का प्रवर्तन किया है, उनका महत्व स्वयंसिद्ध है। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी को भी हम उपर्युक्त कवि-आलोचकों की श्रेणी में रख सकते हैं। अपने काव्यानुभव से उन्होंने विभिन्न कवियों की रचनाओं में ऐसी विशेषताओं का निर्देशन किया है जिसकी अपेक्षा कोरे आलोचक से नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि समीक्षा साहित्य का मस्तिष्क है और रचना हृदय। माखनलाल जी के समीक्षक में हमें इस मस्तिष्क एवं हृदय का अदभुत सामंजस्य देखने को मिलता है। इस दृष्टि से उनके द्वारा लिखित जिन महत्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षाएं विशेष रूप से पठनीय हैं उनमें साकेत, शिकारी (श्रीराम शर्मा), उत्सर्ग (लक्ष्मण सिंह), कनुप्रिया एवं परशुराम की प्रतीक्षा आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

प्रत्येक युग का रचनाकार अपनी समकालीन समीक्षा से अपने कृत्य का समुचित मूल्यांकन तलब करता है और प्रायः उसे निराशा ही हाथ लगती है। इसी निराशा के कारण किसी

भवभूति 'उत्पस्थतें तु मम् कोऽपि समानधर्मा' की घोषणा कर संतोष कर लेना पड़ता है और किसी निराला को खुद अपने ही गीत और कला की विवेचना करनी पड़ती है । इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अपने समय के समीक्षा-कर्म के प्रति असंतोष प्रकट करते हुए लिखा था—'मुझे एक चीज जो खटकती रहती है' वह है हमारे आलोचना-ग्रंथों का मूल्यमापन । दस-पंद्रह वर्ष के बीच के कलाकारों की जमीन लेकर हम चर्चा करने बैठ जाते हैं । कुछ को गण्य सिद्ध करते हैं कुछ को नगण्य । अध्ययन और पहुँच का अभाव, और सस्ते विशेषणों का उपहार हमारे ग्रंथों की विशेषता होती है ।'' (रचनावली, भाग-5, पृ० 210) आगे जब वे अपनी व्यंग्यपूर्ण चुटीली शैली में अपने समय की आलोचना को 'शल्यक्रिया' की संज्ञा देते हुए लिखते हैं—''मुहाफिजखानों की कब्रें उखाड़कर हर कलाकार की कीर्ति पर शोध और आलोचना के नाम पर शल्यक्रिया होती है । किन्तु युग की पीढ़ी को देने के लिए अधिकांशतः कुछ नहीं होता'' तब उनका असंतोष और भी मुखर हो जाता है ।

जाहिर है कि माखनलाल चतुर्वेदी कोई पेशेवर समीक्षक नहीं थे । वस्तुतः उन्हें यह अतिरिक्त दायित्व ''कर्मवीर'' के सम्पादक के रूप में निबाहना पड़ा था जिसे उन्हें सफलता पूर्वक निबाहा भी । किन्तु चतुर्वेदी जी की समीक्षात्मक टिप्पणियां इस तथ्य का साक्ष्य देती हैं कि वे पहले कवि हैं तब समीक्षक । यह जहां कुछ हद तक उनकी प्रशंसा मानी जानी चाहिए, वहीं उनकी कठिनाई भी हो जाती है । उसके काव्यमय गद्य का उदाहरण देने की आवश्यकता मैं महसूस नहीं करता, किन्तु गद्य में विशेषतः समीक्षात्मक गद्य में जो पैनापन, जो विश्लेषणात्मक गुण चाहिए उसका अभाव तो उनके लेखन में यदाकदा दिखाई पड़ता ही है, उनके वाक्य अनेक स्थानों पर काव्य के आवेश से अत्यधिक आविष्ट हो उठते हैं । उदाहरणार्थ ''एक देहाती गंवार'' के छद्म नाम से मैथिलीशरण गुप्त कृत ''भारत-भारती'' की पुस्तक समीक्षा करने के क्रम में उनके द्वारा लिखित कुछ उक्तियां नमूने के तौर पर द्रष्टव्य हैं ''इस ग्रंथ ने अपनी उपयोगिता का परिचय भी दिया है । व्याकुल हृदयों का मित्र बन रहा है, आड़े आने वालों का कांटा बन रहा है, कवियों की दिशा बन रहा है, लेखकों का विचार-कोश बन रहा है और सच तो यह है कि उन गरीबों का, जिनका देश में आज जगदीश्वर के सिवाय कोई नहीं—गीत बनता जा रहा है । एक देहाती के पढ़े-लिखे लड़के ने पुस्तक की दो सतरें जोर से पढ़ दीं—मां रो उठी, बाप देखता रह गया, पड़ोसी इकट्ठे हो गए । बूढ़ी दादी ने प्यार से पूछा—''यह कहां से सीखा बेटा !''

लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं कि चतुर्वेदीजी द्वारा विभिन्न कृतियों के संदर्भ में समय-समय पर लिखित समीक्षात्मक टिप्पणियां निरर्थक हैं । वस्तुतः माखनलालजी ने कुछ अपवादों को छोड़कर किसी कृति का मूल्यांकन विशुद्ध समीक्षात्मक दृष्टि से न करते हुए अपने समीक्षण कार्य को मुख्यतः 'पुस्तक-समीक्षा' तक ही सीमित रखा है । मेरा यह मंतव्य इसलिए और भी पुष्ट हो जाता है क्योंकि अपनी उसी टिप्पणी में खुद चतुर्वेदी जी ने ही ''भारत-भारती'' को साहित्य-समीक्षकों के लिए विचारार्थ प्रस्तुत किया है—' साहित्य-संसार के इस आदरणीय ग्रंथों की आलोचना होनी चाहिए । पर इस ग्रंथ की प्रत्येक पंक्ति को बुरी बताने और उस पर गाली सुनाने के लिए नहीं, और न इसे सतसई-संहार बना डालने के लिए । बल्कि इसलिए कि ग्रंथकार समालोचना में आई हुई बातों को अपने हृदय-देश में स्थान दे सके और उसके कर्म का जोरदार प्रवाह, प्रेम और श्रद्धा से आलोचना पढ़ते-पढ़ते ही फिर

आ पड़े। ···यदि ऐसा न किया जाएगा तो साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रादुर्भाव न होगा और प्रादुर्भूत हो जाने वाले ग्रंथों की उचित इज्जत न होगी। साहित्य की बाढ़ मारी जाएगी। यदि किसी कोने में हमारे साहित्य के समालोचक हों तो वे इस कार्य को करें।"

(रचनावली, भाग—5, पृ० 212)

पुस्तक-समीक्षा आलोचना की पहली सीढ़ी है। वस्तुतः इसके ही क्रोड़ से आलोचना जन्म लेती है। पुस्तक समीक्षा के छनने का छिद्र कुछ बड़ा होता है जिसमें से हर कृति निकल जाया करती है। आलोचना इनमें से उन्हीं कृतियों का चुनाव करती है जो उसके निकष पर खरी उतरती हैं। इसी कारण पुस्तक-समीक्षा के आधार और स्वरूप को लेकर उतने ही और वैसे ही प्रश्न उठते हैं, जितने विशुद्ध समीक्षा या आलोचना को लेकर उठते रहे हैं। जब कोई समीक्षक किसी कृति पर अपनी टिप्पणी देता है तब तत्काल यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि उसकी टिप्पणी का आधार क्या होना चाहिए—पुस्तक का वर्ण्य-विषय, वर्ण्य-विषय का विश्लेषण, विषय की उपयोगिता पुस्तक पढ़ने के बाद उसकी निजी अवधारणा अथवा शास्त्रीय निकष। निश्चय ही ये सभी संदर्भ एकांगी हैं। अतः इनको आधार-रूप में स्वीकार कर की गई समीक्षा भी एकांगी होगी। शायद यही कारण है कि माखनलालजी ने विभिन्न कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए व्यावहारिक दृष्टिकोण से पुस्तक का परिचयात्मक विवरण देना ज्यादा बेहतर समझा है। निश्चित रूप से ये विवरण पत्रिका के सीमित कलेवर को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए "चंद हसीनों के खतूत"। पांडेय बेचनशर्मा उग्र : गबन, आंधी, एक घूंट, "पिता के पत्र पुत्री के नाम" आदि विभिन्न कृतियों की चतुर्वेदी जी द्वारा की गयी समीक्षाएं द्रष्टव्य हैं जिनमें इन कृतियों के गुरूगंभीर अध्ययन से बचते हुए पुस्तकों की परिचयात्मकता को ज्यादा महत्व दिया गया है।

एक कुशल पुस्तक-समीक्षक किसी कृति को अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुंचाने में मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। इस भूमिका में वह पाठकों की जिज्ञासा को बढ़ाता है और बढ़ाते-बढ़ाते उस सीमा तक ले जाता है जहां पहुंच कर पाठक पुस्तक पढ़ने और खरीदने को बाध्य हो जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में उसका काम यह बताना है कि "समीक्ष्य पुस्तक में क्या लिखा गया है और किस ढंग से लिखा गया है। वह विषय उपयोगी है या नहीं' लेखक ने कोई नई बात लिखी है या नहीं, यही विचारणीय विषय है।" इस निकष पर यदि चतुर्वेदीजी द्वारा "कर्मवीर" के 10 अक्तूबर 1931 अंक में लिखित "पिता का पत्र पुत्री के नाम" पुस्तक की समीक्षा पर विचारा जाए तो उनकी इस पुस्तक-समीक्षा का "परफेक्शन" स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस क्रम में उनके द्वारा लिखित कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—"भारतवासी, पंडित जवाहरलाल नेहरू को युवकों के आदर्श और एक निर्भीक नेता ही की तरह जानते हैं, यह सब होते हुए भी वे आदर्श पिता हैं। जवाहरलाल जी पितृत्व की जिम्मेदारी का अनुभव करते हैं। पुस्तक में उनके पत्रों का संग्रह है जो उन्होंने अपनी पुत्री कुमारी इन्दिरा को तीन साल पहले लिखे थे। इन पत्रों में "यहां राजी-खुशी है, तुम्हारी राजी-खुशी भगवान से चाहता हूं" नहीं है। इनमें संसार की विभिन्न बातों की जानकारी है। ···पुस्तक में बालकों को संसार के गंभीर विषयों का प्रारंभिक ज्ञान कराया गया है। बालपन की रुचि का ख्याल कर सोलह चित्र दिए गए हैं। इससे इसकी ओर बालकों का आकर्षण और भी बढ़ जाएगा। ··प्रत्येक हिन्दीभाषी माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वह इस पुस्तक को खुद

पढ़े, एवं बालक-बालिकाओं को इसे भेंट करे।" (रचनावली, भाग-5 पृ० 217) परिचयात्मकता पुस्तक समीक्षा का प्राण है और चतुर्वेदीजी की सीधी-सादी मगर प्रभावोत्पादक शैली में यह अपनी संपूर्णता के साथ यहाँ अभिव्यक्त हो पाई है। कोई अनाड़ी पुस्तक-समीक्षक आलोचना एवं पुस्तक-समीक्षा के बीच पार्थक्य की समझ के अभाव में पाठकों को बड़ी आसानी से बहका कर इसमें आए वर्ण्यविषय की विशद व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है। लेकिन इस प्रक्रिया से पुस्तक-समीक्षा का उद्देश्य बाधित होता है और उससे जुड़ी व्यावसायिकता मारी जाती है' इसके साथ ही यहां ध्यातव्य है कि पुस्तक-समीक्षा लिखते हुए माखनलाल जी अपने राष्ट्रभाषा-प्रेम के कारण जवाहरलाल नेहरू को मूल रूप में अंग्रेजी में पुस्तक लिखने के लिए उलाहना दिए बिन न रह सके हैं।

द्विवेदीयुगीन कुछ जयजयकारी समीक्षकों की तरह माखनलालजी की समीक्षकीय दृष्टि में तटस्थता का अभाव नहीं है। तभी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा ने समीक्षक को उसकी कृति की निर्बलताओं की ओर से आंख मूंदने नहीं दिया है। प्रेमचन्द के प्रति आदरभाव रखते हुए भी जब वे "गबन" के विषय में लिखते हैं—"हमें यह मालूम होता है कि यह रचना शायद कुछ कम अवकाश में लिखी गई है"—तो इससे उनकी आलोचकीय तटस्थता एवं ईमानदारी का पता चलता है।

अन्तिम बात यह कि जहां तक माखनलालजी चतुर्वेदी द्वारा विभिन्न विषयों से संबंधित कृतियों की समीक्षा के क्रम उपस्थापित प्रतिपत्तियों का प्रश्न है, हो सकता है उनसे सभी सहमत न हों. किन्तु अपने निष्कर्षों को आधार देने हेतु जो तर्क उन्होंने दिए हैं, उनमें दम-खम है, इसे तो मानना ही पड़ता है। □

आग्रह

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10/- रुपये डिमाण्ड ड्राफ्ट / धनादेश / पोस्टल आर्डर से भेज कर समय भी बचायें, असुविधा भी।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी जे० एंड० के०

अकॅडमी आफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

जम्मू—180001

लेख

कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण—'रामावतारचरित'

☐ डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

कश्मीरी साहित्य में रामकथा-काव्य रचने की सुस्पष्ट परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी के आसपास से देखने को मिलती है। कुल मिलाकर सात रामायणें लिखी गईं। जिनके नाम हैं—रामवतार-चरित, शंकर रामायण, आनंद रामावतारचरित, विष्णु प्रताप रामायण, रामायण-इ-शर्मा, ताराचन्द रामायण तथा अमर रामायण। इन में सर्वाधिक लोकप्रिय और कश्मीरी की प्रथम रामायण 'रामावतार चरित' है। इसके रचयिता कुर्यगांव (कश्मीर) के निवासी पं० प्रकाशराम (1819-1886 ई०) हैं। कश्मीरी की इस बहुमूल्य रामायण का सानुवाद देवनागरी लिप्यंतरण लेखक ने स्वयं ही किया है और यह काव्य-ग्रन्थ भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ से 1975 में प्रकाशित हुआ है। शेष रामायणें अप्रकाशित हैं।

'रामावतारचरित' के रचयिता श्री प्रकाश राम, जिन्हें ग्रियर्सन महोदय ने चूकवश दिवाकर प्रकाश भट्ट कहा है, देवी त्रिपुर सुन्दरी के अनन्य भक्त थे। देवी की कृपा से ही उन्हें वाक्-शक्ति का अपूर्व वरदान प्राप्त हुआ था। कहते हैं, एक रात खूब वर्षा हो रही थी। प्रकाशराम को दूर से एक डोली अपनी ओर आती हुई दिखाई पड़ी। डोली के वाहकों ने प्रकाशराम को आवाज़ दी। प्रकाशराम जब डोली के निकट पहुंचे तो उसका पर्दा ऊपर उठा। डोली में साक्षात् देवी विराज रही थीं! प्रकाशराम के मन-प्राण दर्शन-सुख से प्रफुल्लित हो उठे। कुछ ही क्षणों बाद देवी अन्तर्धान हो गई प्रकाशराम का भावुक मन देवी-दर्शन का अनूठा प्रसाद पाकर भगवद्-भक्ति में रम गया। उन्होंने कई रचनाएं लिखीं जिनमें सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध 'रामावतारचरित' है। सात कांडों में विभक्त इस प्रबंधकृति का रचना-काल 1847 ई० है। कथानक 'बालमीकि रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' से गृहीत है। 'लवकुश कांड' इस कृति के अन्त में अलग से दिया गया है। समूचा काव्य महाकाव्योचित लक्षणों से युक्त है। प्रारम्भ में ईश-वंदना इस प्रकार की गई है—

नमो नमो गजेन्द्राय एकदन्तधराय च
नमो ईश्वर-पुत्राय श्रीगणेशाय नमो नमः।
गोडन्य सपनुन शरन श्रीराजगरणीशस
करान युस छु रख्या यथ मनुष्यलकस
दोयिम कर सतगौरस पननिस नमस्कार
दिथि सुय गौर पनुन यैमि भवसरि तार। (पृ० 27)

(सर्वप्रथम गणेश जी की शरण में जाएं जो इस मनुष्य-लोक की रक्षा करते हैं। तत्पश्चात् सत्गुरु को नमस्कार करें जो इस भवसागर को पार कराने में सक्षम हैं।)

तुलसी की तरह ही प्रकाशराम की भक्ति दास्य-भाव की है। इसी से पूरी रामायण में वे कवि कम और भक्त अधिक दिखते हैं। 'रामावतारचरित' में सम्मिलित स्तुतियों, भक्ति-गीतों, प्रार्थनाओं आदि से यह बात स्पष्ट हो जाती है। ध्यान से देखा जाए तो प्रकाशराम ने सम्पूर्ण रामकथा को एक आध्यात्मिक-रूपक के रूप में परिकल्पित किया है जिसके अनुसार प्रायः सभी मुख्य पात्र और कथा प्रसंग प्रतीकात्मक आयाम ग्रहण करते हैं। सत् और असत् का शाश्वत द्वन्द्व इस रूपक के केन्द्र में है। 'रामायनुक मतलब' (रामायण का अर्थ) प्रसंग में कवि की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

गौरव गेंडमॖच छि वथ, बोज़ कन दार।

छु क्याह रोज़ुन छु बोज़ुन दामावतार॥
ति बोज़नॖ सूत्य वौन्दस आनन्द आसी।

यि कथं रठ याद, ईशर व्याद कासी॥
ति ज़ानख पान दयुगत क्याह चैह हावी।
कत्युक ओसुख चै कौत-कौत वातॖनावी॥ (पृ० 33)

(गुरुओं ने एक सत्पथ तैयार किया है, ज़रा कान लगाकर इसे सुन। यहां कुछ भी नहीं रहेगा, बस रहेगी रामावतार की कथा। इसे सुन कर हृदय आनंदित हो जाएगा, यह बात तू याद रख। इससे तेरी सारी व्याधियां दूर हो जाएंगी। तू स्वयं जान जाएगा कि प्रभु-कृपा से तू कहां से कहां पहुंच जाएगा...।)

प्रकाशराम के राम लोक-रक्षक, भू-उद्धारक और पाप-हंता हैं। वे दशरथ-पुत्र होते हुए भी विष्णु के अवतार हैं। पृथ्वी पर पाप का अन्त करने के लिए ही उन्होंने अवतार धारण किया है। 'रामावतारचरित' की कथा 'रामचरितमानस' की ही तरह शिव-पार्वती संवाद से प्रारम्भ होती है। पूरी कथा सात काण्डों—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य काण्ड किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड और उत्तर काण्ड में विभाजित है। इन काण्डों के अन्तर्गत मुख्य कथा-बिन्दुओं को मसनवी-शैली के अनुरूप विभिन्न उपशीर्षकों में बांटा गया है। इन उपशीर्षकों की कुल संख्या 56 है। कुछ उपशीर्षक देखिए—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, भरत को खड़ाऊं देना, शूर्पनखा को सज़ा देना, जटायु से युद्ध और सीता का कैद होना, लंका की तरफ़ फ़ौजकशी, रावण और सुग्रीव के दरम्यान खतोकिताबत, कुम्भकर्ण के साथ जंग, मक्केश्वर का किस्सा, वापस अयोध्या आ जाना आदि। मसनवी और भारतीय महाकाव्य के लक्षणों का सम्मिश्रण 'रामचरित मानस' में सुन्दर ढंग से हुआ है।

'रामावतारचरित' में वर्णित अधिकांश प्रसंग मार्मिक बन पड़े हैं जिस से कवि की विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। अयोध्यापति दशरथ की सन्तान-कामना,

कामना पूर्ति के लिए व्रतादि रखना, स्वप्न में भगवान विष्णु द्वारा वरदान देना आदि प्रसंग लड़े ही स्वाभाविक/भावपूर्ण बन पड़े हैं—

वौथन सुलि प्रथ प्रबातन नित्य करान श्रान
रछन जोगैन गौसानैन सूत्य थवान ओस जान,
स्यठा रातस-दौहस लीला करान ओस
शरन सपनुन नारायण पानन टोठ्मोस । (पृ० 3)

(वे अर्थात् राजा दशरथ नित्य प्रभात-वेला में जाग कर स्नानादि करते तथा साधु-सन्तों और जोगियों के पास आशीर्वाद लेने जाते । पुत्र सुख के अभाव में उनका मन सदैव चंचल रहता । एक रात सपने में नारायण (विष्णु) ने उन्हें स्वयं दर्शन दिए तथा कहा कि मैं शीघ्र तुम्हारे घर में जन्म ले रहा हूं...)

वचनबद्धता के प्रश्न को लेकर दशरथ और कैकेयी के बीच जो परिसंवाद होता है, उस में एक पितृहृदय की शोकाकुल/वात्सल्ययुक्त भावाभिव्यक्तियों को मूर्त्तता प्राप्त हुई है—

त्युथुय बूज़िथ राज़ु बुथकिन्य पथर प्यव

त्युथुय युथ सारि ज्रोनुख सपुन शव,
अमा करुन ख्यमा सोज़न नु राम वनवास

मरअ तस रौस वन्य करतम तम्युक पास,

यि केछा छुम ति सोरुय दिमु बु तस

मैं छुम अखु रामजुव. छुम त्युतुय बस ।

(कैकेई का अन्तिम कथन सुनते ही राजा लड़खड़ाते हुए अचेतावस्था में मुंह के बल ज़मीन पर गिर पड़े । दयार्द्र स्वर में उन्होंने कैकेई से विनती की—मुझ पर दया कर, राम को बनवास न दिला । मैं उसके बिना जिन्दा न रह सकूंगा । वचन देता हूं कि मेरे पास जो कुछ भी है वह भरत को दे दूंगा ।...मेरा तो बस एक रामजी ही सब-कुछ है, बस एक रामजी !)

वन-गमन प्रसंग के अन्तर्गत माता कौशल्या की विरह-व्यथा को जिस तन्मयता के साथ कवि ने वर्णित किया है, उससे एक मातृहृदय की तलस्पर्शी संवेदनाओं का परिचय मिल जाता है—

कौशल्यायि हुं गोबरो

करयो गुरु गूरो ।

परयो रामु रामो

कर यो गुरु गूरो...।

कौतू गोह्रम चु त्रोविथ

कसू ह्यकु हाल बु वोविथ

अनी कुस मुननोविथ

करयो गूरु गुरो...। (पृ० 86)

(रे कौशल्या के नन्दन !
आ, तुझे पालने में झुलाऊं
राम-राम पुकारूं
आ, तुझे हिण्डोले में झुलाऊं।
छोड़ मुझे अकेला कहां गया रे तू ?
अब यह हाल मैं अपना किसे सुनाऊं ?
मनाकर तुझे मैं कैसे वापस बुलाऊं ?
आ, तुझे पालने में झुलाऊं...।)

जटायु-रावण-युद्ध वर्णन में कवि की सजीव वर्णन-शैली द्रष्टव्य है—

खबर बूज़िथ गव जटायन खबरदार
कफ़स फुटरुन तु लारान गव ब यक़बार,

पुनुम चन्द्रस यैलि व छुन ह्यथ चलान कीत
दै'पुन तस ओय मरुत पापुक गोय हीत,
परकि दकु सूत्य छुस आकाशि त्रावान

ज़मीनस प्यठ अेडजि छुस ज़ोरअ फुटरावान। (पृ० 145)

(खबर सुन सीता-हरण की
हुआ जटायु खबरदार,
पूनम-चन्द्र को सेतु द्वारा
ग्रसित जो देखा
तो छेड़ दिया
पापी से युद्ध ज़ोरदार।
'क्यों पाप करके मृत्यु को
बुला रहा है रे मूर्ख ?
आज होगा अन्त तेरा
मिटेगा तू रे धूर्त्त !
आकाश में उछाला, भू पर पटका
पंख के धक्कों से उसने
कर दिया रावण का बुरा हाल,
हड्डियों का भुरकस निकाल
कर दिया उसका हाल बेहाल...।)

यद्यपि 'रामावतारचरित' की मुख्य कथा का आधार बाल्मीकि कृत रामायण है, तथापि कथा सूत्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और दृष्टि के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। दो-चार स्थानों पर काव्यकार ने कथा-संयोजन में किन्हीं नूतन (विलक्षण अथवा मौलिक ?)

मान्यताओं की उद्घोषणा की है। सीताजन्म के सम्बन्ध में कवि की मान्यता यह है कि सीता, दरअसल, रावण-मंदोदरी की पुत्री थी। मन्दोदरी एक अप्सरा थी जिस की शादी रावण से हुई थी। उनके एक पुत्री हुई जिसे ज्योतिषियों ने रावण-कुल के किए घातक बताया। फलस्वरूप मंदोदरी उसके जन्म लेते ही, अपने पति रावण को बताए बिना, उसे एक सन्दूक में बन्द कर नदी में फिकवा देती है। बाद में राजा जनक यज्ञ की तैयारी के दौरान नदी-किनारे उसे पाकर कृतकृत्य हो उठते हैं। लंका में अपहृत सीता को देख मंदोदरी वात्सल्याधिक्य से विभोर हो उठती है। पंक्तियां देखिए—

> तुजिन तमि कौछि क्यथ ह्यथ ललनोवन
>
> गेमच कौलि यैलि लेबन लौलि क्यथ सोवन,
>
> वुछिव तस माजि मा माजुक मुशुक आत्र
> लबन यैलि छस बबन दौद ठींचि तस द्राव। (पृ० 145)

(तब उस मंदोदरी ने उसे गोद में उठाकर झुलाया तथा पानी में फैंकी उस सीता को पुन: पाकर अपने अंक में सुलाया। अहा, अपने रक्त-मांस की गंध पाकर उस मां के स्तनों से दूध की धारा द्रुत गति से फूट पड़ी...।)

'रामावतारचरित' में आई दूसरी कथा-विलक्षणता राम द्वारा सीता के परित्याग की है। सीता को बनवास दिलाने में रजक-घटना को मुख्य कारण न मानकर कवि ने सीता की छोटी ननद (?) को दोषी ठहराया है जो पति-पत्नी के पावन-प्रेम में यों फूट डालती है—

> दौपुन तस कुन यि वुछ बायो यि क्याह छुय
> दोहय सीता यथ कुन वुछिथ तुलान हुय,
> मैं नीमस चूरि चतस आसि पान मारान
> वदन वाराह त नेतरम खून हारान...। (पृ० 379)

(रावण का चित्र दिखाकर—देखो भैया, यह क्या है! सीता इसे देख-देख रोज़ विलाप करती है। जब से मैंने यह चित्र चुरा लिया है, तब से उसकी आंखों से अश्रुधारा बहे जा रही है। यदि वह यह जान जाए कि ननद ने उसका यह चित्र चुरा लिया है तो मुझे ज़िन्दा न छोड़ेगी .)

'रामावतारचरित' के युद्धकाण्ड प्रकरण में उपलब्ध एक अत्यन्त अद्भुत और विरल प्रसंग 'मक्केश्वरलिंग' से सम्बन्धित है जो प्राय: अन्य रामायणों में नहीं मिलता है। यह प्रसंग जितना दिलचस्प है, उतना ही गुदगुदाने वाला भी। शिव रावण की याचना करने पर उसे युद्ध में विजयी होने के लिए एक लिंग (मक्केश्वर) दे देते हैं और कहते हैं कि जा, यह तेरी रक्षा करेगा, मगर ले जाते समय इसे मार्ग में कहीं पर भी धरती पर न रखना। लिंग को अपने हाथों में आदरपूर्वक थामकर रावण आकाश मार्ग द्वारा लंका की ओर प्रयाण करते हैं। रास्ते में उन्हें लघु-शंका की आवश्यकता होती है। वे आकाश से नीचे उतरते हैं तथा इन असमंजस में पड़ते हैं कि लिंग को वे कहां रखें? तभी ब्राह्मण-वेश में नारद मुनि वहां पर

प्रगट होते हैं जो रावण की दुविधा भांप जाते हैं। रावण लिंग उनके हाथों में यह कह कर सम्भला जाते हैं कि वे अभी निवृत्त होकर आ रहे हैं। रावण लघुशंका से निवृत्त हो ही नहीं पाते ! सम्भवतः यह प्रभु की लीला/माया थी। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त नारद जी लिंग को धरती पर रख कर चले जाते हैं। तब रावण के खूब प्रयत्न करने पर भी वह लिंग उस स्थान से हिलता नहीं है। और इस प्रकार शिव द्वारा प्रदत्त लिंग की शक्ति का उपयोग करने से रावण वंचित हो जाते हैं। (पृ० 295-297)

'रामावतारचरित' में कुछ ऐसे भी कथा-प्रसंग हैं जो तनिक भिन्न रूप में संयोजित किए गए हैं। उदाहरण के तौर पर रावण-दरबार में अंगद के स्थान पर हनुमान के पैर को असुर पूरा ज़ोर लगाने पर भी उठा नहीं पाते। (पृ० 212) एक अन्य स्थान पर रावण युद्ध नीति का प्रयोग कर सुग्रीव को अलग से एक खत लिखता है और अपने पक्ष में करना चाहता है। तर्क वह यह देता है कि क्या मालूम किसी दिन उसकी गति भी उसके भाई (बालि) जैसी हो जाए ! वह भाई के वध का प्रतिशोध लेने के लिए सुग्रीव को उकसाता है और लंका आने की दावत देता है जिसे सुग्रीव ठुकरा देते हैं। (पृ० 228) इसी प्रकार महिरावण/अहिरावण का राम और लक्ष्मण को उठाकर पाताल-लोक ले जाना और बाद में हनुमान द्वारा उसे युद्ध में परास्त कर दोनों की रक्षा करना—प्रसंग भी रामावतारचरित' का एक रोचक प्रकरण है (पृ० 259, 284)। 'रामावतारचरित' के लवकुश-काण्ड में भी कुछ ऐसे कथा-प्रसंग हैं जिनमें कवि प्रकाशराम की कतिपय मौलिक उद्भावनाओं का परिचय मिल जाता है। लवकुश द्वारा युद्ध में मारे गए राम, लक्ष्मण; भरत और शत्रुघ्न के मुकुटों को देखकर सीता का विलाप करना, सीता जी के रुदन से द्रवित होकर वशिष्ठ जी द्वारा अमृत-वर्षा कराना और सेना सहित रामादि का पुनर्जीवित हो उठना, वशिष्ठ के आग्रह पर सीता जी का अयोध्या जाना किन्तु वहां राम द्वारा पुनः अग्नि-परीक्षा की मांग करने पर उसका भूमि-प्रवेश करना आदि प्रसंग ऐसे ही हैं।

कश्मीरी विद्वान् डॉ० शशि तोषखानी के अनुसार 'रामावतारचरित' की सब से बड़ी विशेषता है स्थानीय परिवेश की प्रधानता। अपने युग के सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश का कृति पर इतना गहन प्रभाव है कि उसका स्थानीय तत्त्वों के समावेश से पूरा कश्मीरीकरण हो गया है। ये तत्त्व इतनी प्रचुर मात्रा में कृति में लक्षित होते हैं कि अनेक पात्रों के नाम भी कश्मीरी उच्चारण के अनुरूप ही बना दिये गये हैं। जैसे जटायु यहां पर 'जटायन' है, कैकेयी' कीकी' इन्द्रजीत 'इन्द्रजेठ' है और सम्पाति 'सम्पाठ' आदि। रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेषभूषा आदि में स्थानीय परिवेश इतना अधिक बिम्बित है कि 19वीं शती के कश्मीर का जनजीवन साकार हो उठता है। राम के वन गमन पर विलाप करते हुए दशरथ कश्मीर के परिचित सौंदर्य-स्थलों और तीर्थों में राम को ढूंढते हुए व्याकुल दिखाए गए हैं। (पृ० 92-93), लंका के अशोक-वन में कवि ने गिन-गिन कर उन तमाम फूलों को दिखलाया है जो कश्मीर की घाटी में अपनी रंग-छवि बिखेरते हैं। (पृ० 200) ...राम का विवाह भी कश्मीरी हिन्दुओं में प्रचलित द्वार-पूजा, पुष्प-पूजा आदि रीतियों और रस्मों के अनुसार ही होता है। 'लवकुशचरित' में सीता को कश्मीर के एक गांव 'शंकरपुर' में पृथ्वी में प्रवेश करते हुए दिखाया गया है। (पृ० 470)।

प्रकाशराम की भाषा प्रायः संस्कृत-निष्ठ है जिसमें कहीं-कहीं पर उर्दू-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी प्रचुरता से मिलता है। खून, मलाल, शादमानी, लाचार, गम, बाज़ीगरी, हुक्मरानी आदि कुछ ऐसे ही शब्द हैं। □

लेख

उपेन्द्र रैणा और उनका 'आत्मदाह'

□ डॉ. निजामुद्दीन

डॉ॰ उपेन्द्र रैणा जम्मू-कश्मीर प्रदेश के नई पीढ़ी के कवियों में सशक्त हस्ताक्षर हैं। इधर-उधर प्रकाशित कविताओं के अतिरिक्त उनके अब तक दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—

(1) 'चीख भी एक भाषा है।' (1980)
(2) 'आत्मदाह' (1991)

श्रीनगर से दिल्ली तक की अपनी काव्य-यात्रा में उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को अधिक तेजवन्त और प्रभविष्णु बनाया हैं उसे शिल्पगत औदात्य प्रदान किया है। उनकी अनुभूति, संवेदनशीलता गहन तथा मार्मिक है। वह वस्तुस्थिति का आकलन करने की पूर्ण सामर्थ्य रखते हैं। उनके भावोद्दीप्त चित्र हृदयहारी हैं। परिवेशगत स्थिति का चित्रांकन करने में उनका शिल्प-सौष्ठव मन को बांधने वाला है। जहां कहीं वह समसामयिक विषयों संस्पर्शन करते हैं वहां उनकी पकड़ गहरी और संवेद्य होती है। आत्मदाह' की कविताएं 'मण्डल कमीशन' से अभिप्रेरित रचनाएं नहीं। 1980 का वर्ष 'मण्डल कमीशन' के रूप में युवा वर्ग को आन्दोलित करने वाला था और अनेक युवकों/युवतियों ने अपने भविष्य को तिमिरावृत समझकर आत्महत्या का जघन्य अपराध किया यह भावावेश में उठाया गया विवेक-विहीन कदम था। कविवर डा॰ उपेन्द्र रैणा का अपना आत्मदाह है, कवि का आत्म-दाह है। तिल-तिल जलकर शमा दूसरों को आलोक प्रदान करती है, जितनी वह पिघलती है उतना ही आलोक विकीर्ण करती है। कवि भी अपने को तिल-तिल जलाता है, पिघलाता है और फिर काव्य का आलोक प्रसारित करता है। उसका सर्जन उसका आलोक है। उसका तिल-तिल जलना, मौन संतप्तावस्था में भाव-विगलित होना है। करुणासिक्त होने पर ही,

क्रौंच पक्षी का निर्मम वध देखकर और वह भी काम-केलि में अभिरत युगलपक्षी का] वाल्मीकि की काव्य-वाणी स्वतः प्रस्फुटित हुई—

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वम् गमः शाश्वती समा,
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काम मोहितम ।

और इसी स्वर को और मार्मिक बनाया कवि सुमित्रानंदन पन्त की अग्रांकित पंक्तियों ने—

प्रथम होगा वियोगी कवि
आह से उपजा होगा गान
निकल
वही......

कवि उपेन्द्र रैणा का प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'आत्मदाह' कविता नहीं, कविता का सत्य समझने के लिए अनिवार्य प्रक्रिया है। कविता का सत्य जहां समय का यथार्थ माना जा सकता है, वही काल-खण्डों के समान्तर आदिम प्रश्नों को सही परिप्रेक्ष्य में जानने की शाश्वत प्रक्रिया भी है। आत्मदाह की कविताएं इसी प्रतिक्रिया का दस्तावेज हैं ।'' कवि की यह निश्चल उक्ति हमें इस संग्रह की कविताओं को समझने/परखने में मदद दे सकती हैं और इसी संदर्भ में इस संग्रह की 'आत्मदाह' शीर्षक कविता की विवेचना सारगर्भित होगी ;

मैं वह नहीं हूं
कि इस बार भी मारा जाऊंगा
मरूंगा तो अपनी इच्छा से
नहीं करूंगा आत्महत्या
मगर जलूंगा
राख हो जाऊंगा
जला डालूंगा अपने आपको
कविता की आग में ।

कविताग्नि में स्वयं को दग्ध करना ही कविकर्म है, यही सृजनप्रक्रिया है। इसी सृजन-प्रक्रिया से गुजरते-गुजरते कवि शब्द-अर्थ का, लय-विलय का, एक अभिनव अग्निकुण्ड तैयार करता है जिसकी आंच से पिघल कर ये कुन्दन बनते हैं, भस्म नहीं होते। उस समय काव्यानुभूति कंचनवत् हो जाती है वह नवल सौरभ की महक से गमक उठती है—

खुद जलेगी नहीं कविता
भस्म नहीं होंगे उसके शब्द-अर्थ
वे तो उसकी लय में हैं
मैं लय में विलय हूं
कविता में ध्वनि हूं
आग हूं जीवन की/इसलिए/
जला डालूंगा नहीं खुशबू कविता की ।

कवि का संकल्प सराहनीय है दर्शनीय है। मनुष्य का—कर्मशील मनुष्य का स्वभाव कर्म, संघर्षों में तपते रहकर अपनी जीवन-लीला समाप्त करने में सन्निहित है। 'गोदान' का होरी संघर्षों में तपे व्यक्तित्व की मूर्ति है। उसके प्रतिमान भले ही हमारी सोच से, जीवन-शैली से मेल न खाएं लेकिन जिन संघर्षों का वह खम ठोककर मुकाबला करता है और गले तक पानी में साथ देने वाली उनकी पत्नी धनिया बराबर उसमें ऊर्जा, शक्ति संचरित करती रहती है वह कम झकझोरने वाला प्रसंग नहीं। ओल्ड मैन एण्ड द सी' का नायक भी ज्वालाओं से खेलने वाला अप्रतिम व्यक्तित्व है। कवि भी अपनी कविता की अग्नि में शब्दों-अर्थों, लय-स्वर के संग अपने व्यक्तित्व का होम करता रहता है तभी जाकर काव्य का बिरवा अंकुरित होता है, पल्लवित-पुष्पित होता है। यही वह रचना-कर्म है, रचना-प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति की अलग पहचान होती है उसकी अस्मिता की परख होती है, वह भीड़ में डूबता या ओझल नहीं होता, दूर से अडिग खड़ा दृष्टिगत होता है। भीड़ में अकेला दिखने वाला ही प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार होगा और वैसी प्रतिभा 'आत्मदाह' के रचनाकार में है, नाम है उपेन्द्र रैणा।

हम 'आत्मदाह' की कविताओं को दो रूपों में समाकलित कर सकते है। प्रथम, वे कविताएं यहां समाविष्ट होंगी जो विचार-चिन्तन प्रधान हैं, जिनमें जीवन-दर्शन की उनकी मन: स्थितियों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। द्वितीय, परिवेशजन्य रचनाओं में एक अन्तर्सूत्र व्याप्त है और वे भय, आतंक, असुरक्षा का वातावरण प्रस्तुत करती हैं विशेषकर कश्मीर की वर्तमान अशान्तिमय स्थिति के चित्रांकन में कवि की मानवीय भावनाओं को रेखांकित करती हैं जिनमें एक विशेष प्रकार का 'नॉस्टेलजिया' परिलक्षित होगा। 'यात्रा' शीर्षक से तीन लघु कविताएं सहज ही ध्यान आकृष्ट करती हैं। दो अनजाने जीवन-साथी जब सहयात्रा करते हैं, किसी झील या नदी में नौका विहार करते हैं तो एक विशेष प्रकार की आदन्दमय स्थिति होती है, प्रथम मिलन की मौन या नि:शब्द यात्रा अपनी अलग मन:स्थिति की सूचक होती है और नदी की यात्रा पृथक् प्रकार की मानसिक दशा में लिपटी रहती है। कितने सहज भाव से कवि एक गहन-गम्भीर बात कह देता है—

तुम
नदी के भीतर
यात्रा कर रहे हो
और
नदी
मेरे भीतर।

'नदी', 'मैं', 'तुम' सभी अपनी-अपनी यात्रा में शामिल हैं। यह यात्रा भी अनादि तथा अनन्त है जीवन-सलिला शाश्वत है, निरापद प्रवहमान है।

जिस घर में हम रहते हैं वह सचमुच पेड़नुमा घर होता है। घर का स्वामी विशाल छायादार वृक्ष होता है उसका परिवार फूलता-फलता है, वृक्षवत् फैलता है। वह स्वयं चाहे जैसी दरिद्रावस्था में भी क्यों न रहे, सदा अपनी संतान को 'राजकुमार' के रूप में देखता है,

प्रसन्नवदन, हंसता-खेलता। इस पेड़नुमा घर को वह निज जीवन क्षणों से जोड़ता हुआ एक इतिहास का सृजन करता है और इस इतिहास का भावी इतिहास भी इसी प्रकार रचा जाता है। यह परम्परा है, शाश्वत पेड़नुमा घर को संज्ञायित करने की। 'बाबूदास' में व्यक्ति का आत्मक्रन्दन और आत्मपीड़न देखा जा सकता है। हम अपने चिर संपोषित संस्कारों को छोड़ नहीं पाते, उनके साथ जीते-मरते हैं। ग्राम्य एवं नगरीय संस्कृतियां यहां साथ-साथ रहती हैं दोनों से कविता को जीवन को भाव-सम्पदा प्राप्त होती हैं। उनकी 'दर्द की भाषा' कविता हमारी अपनी ही जीवन-चित्रावली है। जहां मनुष्य में संवेदना नहीं तो वहां बेशुमार मनुष्य निर्जीव चित्र ही तो बन जाते हैं दर्दहीन, भावहीन! मनुष्य अंधकार में किसी का प्राणवध कर देता है। वह भीड़ से अकेला निकल जाता है और वह अपने ही शरीर को कचोटता है, ग्लानि से कोई सरोकार नहीं, उसकी रक्त-पिपासा शान्त नहीं होती वह और अधिक लम्बे नाखून कर लेता है उसकी आंखें रक्तिम हो जाती हैं। इस दर्द की भाषा को कौन रचेगा, कौन उसका भाषान्तर करेगा? जहां एक ओर कवि जीवन को कोमलता में निरखता है। 'परिभाषा' में वह फूल की सुगंध को आदमी की कोमलता का कारण समझता है या यों कहें कि संघर्षों से वह मनुष्य भागता है जो खुशबू में डूबा रहता है, वहां एक-दूसरे रूप में भी वह संघर्षों से, तूफानों से जूझने का निमंत्रण भी देता है कर्मठ और कर्त्तव्योन्मुख व्यक्ति तूफान की प्रतीक्षा करता है, उससे पीठ दिखाकर, क्लीव बनकर भागता नहीं।

उपेन्द्र रैणा ने व्यंग्योक्तियों से भी अपने भाव उदगार प्रकट किए हैं। राष्ट्रीय एकता के नाम पर हमने तरह-तरह के आयोजन किए, युवा-शक्ति को उस दिशा में मोड़ने का असफल प्रयास किया और वे आयोजन अधिकतर हास्यास्पद बनकर रह गए। उन्हीं आयोजनों में एक दौड़ भी एक थी और इसे भारत की अस्मिता 'खोज' के रूप में कवि ने ग्रहण किया है। कितना तीखा व्यंग्य करता है कवि—

हम दौड़ रहे हैं
सत्य की खोज में
हाथों में मशाल लेकर
और हम
दौड़ रहे हैं
अपने ही देश में
अपने ही देश की खोज में।

हम तो यहां तक कहना चाहेंगे कि हम अपनी ही खोज में लगे हैं आत्मान्वेषण में भटक रहे हैं। 'तारसप्तक' के कवि भी कभी आत्मान्वेषण में रत थे। वहां वे राहों के अन्वेषण में लगे थे। हम तो अपने को, अपने देश को भी शायद ठीक से नहीं पहचान रहे हैं, तभी तो न कबीर याद रहा, न तुलसी बाबा। कवि को यह बात अन्दर ही अन्दर खाए जाती है कि जब समय था तब अपनी पहचान की पहली चिंगारी को उग्र ज्वाला में परिवर्तित क्यों नहीं होने दिया। यदि पहले होश में आ जाते तो आज इस पृथकता-अलगाववाद की अग्नि में जलना न पड़ता।

जिस व्यक्ति ने कश्मीर घाटी के देवकामद, विशालाकार, चिनार के छायादार वृक्षों के सौंदर्य को देखा है उनकी शीतल बयार में बैठकर अपनी थकान दूर की है, उसे जरूर ये वृक्ष याद आते होंगे, विशेषकर आज के समय, जब पर्यटक भी कश्मीर कम जाते हैं, जाने का साहस नहीं करते हैं क्योंकि भय, आतंक का माहौल इतना सघन है कि सभी उधर जाने के नाम पर मौन साध लेते हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी को चिनारों से बहुत लगाव था, अनुराग था! वह अक्तूबर-नवम्बर में चिनारों का अरुण वर्ण देखने को उत्सुक रहती थीं अपनी मृत्यु से चन्द रोज पहले ही वह लाल रंग के पत्तों को देखने कश्मीर गई थीं। कश्मीर में चिनार "राजवृक्ष" है, उसके बिना कश्मीर की पहचान नहीं हो सकती। कश्मीर में कला-कौशल भी चिनार के पत्तों के बिना निष्प्राण है, शाल-दुशालों पर लकड़ी की वस्तुओं पर तांबे-चांदी के बर्तनों पर, 'पेपरमाशी' की कलात्मक वस्तुओं पर सुंदरता के लिए) चिनार के पत्तों को उकेरा जाता है, उसके बेलबूटे बनाए जाते हैं। ऐसा सौंदर्य और लालित्य से भरा चिनार सैलानियों कलाकारों, कवियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। उपेन्द्र रैणा की अनेक कविताएं इस संग्रह में चिनार पर आधृत हैं और उसका प्रमुख कारण है कश्मीर घाटी में बढ़ता हिंसावाद, भय और संत्रास। वह युवकों की तरफ से भी है जो उनके कथनानुसार "स्वाधीनता" के लिए संघर्ष कर रहे हैं और सुरक्षाबलों द्वारा भी है जो उनके कथनानुसार आत्मरक्षा में लगे हैं। हम यहां केवल चिनार को पृष्ठभूमि में रखकर इन कविताओं का आकलन कर रहे हैं, उनकी काव्यात्मक समीक्षा कर रहे हैं।

सद्यः प्रकाशित आत्मदाह' में कुछ कविताएं (इ) चिनार पर केन्द्रित हैं, कुछेक कविताएं हिंसा-भय केन्द्रित हैं, एक कविता नदी—झेलम नदी को केन्द्र बनाकर लिखी गई है। घाटी के मध्यस्थ प्रवाहमान झेलम नदी का पौराणिक नाम 'वितस्ता' है जिस की महिमा का वर्णन संस्कृत ग्रन्थों मे काफी मिलता है इसे कश्मीरी भाषा में 'व्यथ' कहते हैं। इसकी शांत छाती पर सैंकड़ों हाऊसबोट पड़े हैं, शिकारे तैरते हैं और श्रीनगर में सात पुल इसी नदी पर निर्मित है जिनमें अमीराकदल हब्बाकदल, फतहकदल, जैनाकदल, नवाकदल आदि प्रसिद्ध हैं। 'कदल' को कश्मीरी भाषा में पुल कहा जाता है। इसी झेलम नदी की कवि स्तुति करता हुआ कहता है कि झेलम अपने सिरफिरे बच्चों को सद्मार्ग दर्शाए, मानो वह अपनी मां को छल रहा है, धोखा दे रहा है। कुछ पंक्तियां देखिए—

साक्षी है उसका प्रवाह
कि जब भी किसी ने
नदी को काटना चाहा
वह घाटी के अन्तरंग में बहती रही
किसी को प्यासा नहीं रखा नदी ने
क्योंकि उसकी यात्रा कभी खत्म नहीं होती

× ×

नदी, तुम सूखती नहीं
सहजता से बहती हो
इसलिए तुम हमेशा उसे क्षमा करती हो।

चिनार कश्मीर में सभी का बाल-सखा है । बालपन से अपने प्रत्येक जीवन-बसंत को, जन्मदिन को, बालावस्था से यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था तक इसे देखा, अपने दिन बिताए और कहानी का पात्र न होकर मौसम का, जीवन की प्रत्येक घड़ी का साक्षी रहा है—

तुम साक्षी भी रहे हो
हर बदलते मौसम के
हर खिड़की-द्वार के, देहरी आंगन के
रिश्तों की खुशबू के,
नदी के प्रवाह के ।

लेकिन आज स्थिति कुछ क्रान्त है, रक्तरंजित है—

क्या उत्तर दूं मैं
अपने पूर्वजों को
उन ऋषियों-मुनियों को,
जिन्होंने अपने तपोबल से
सौंप दिया था तुम्हें मेरे अन्तरंग को
आज दोनों के जिस्म हैं लहूलुहान
क्योंकि तुम हो गए हो आदमखोर

कवि चिनार को 'आदमखोर' इस लिये कहता है कि कश्मीर घाटी में, चिनारों के सन्निकट रक्तपात हो रहा है । 'चिनार कट रहा है' में कवि चिनारों को बेतहाशा कटते देखना नहीं चाहता । वह कहता है कि इन्हें काटने से अच्छा होता यहां चिनार उगे ही न होते, और सकल घाटी एक मरुस्थल होती, या अंधेरे का जंगल, या फिर एक सागर जिसे कोई अपनी दृष्टि की आरी से भी विच्छिन्न न कर पाता । कवि को मालूम है कि कश्मीर घाटी रक्त-रंजित है, लेकिन सद्भाव का, साम्प्रदायिक सौहार्द का एक फूल अब भी खिला है । उसे जड़ से मत उखाड़ो, सन्नाटे में भी वह मुरझाया नहीं । शायद नगर के विध्वंसकारी व्याकरण को वह अभी तक नहीं पढ़ सका, बम-विस्फोट और बंदूक की भाषा से अनभिज्ञ है । इसलिए उस फूल की भाषा से अनभिज्ञ है । इसलिए उस फूल की भाषा को ऐसे शब्दायित न किया जाए जिससे चिनार भी मौसम-बेमौसम लाल वर्ण का होने लगे और उसकी हर टहनी, हर पत्ता आदमखोर बनने लगे । कवि को ऐसा लगता है कि लहूलुहान घाटी की, सन्नाटे में पथराई आंखें एक ही प्रश्न पूछती हैं कि नदी की पहचान कहां खो गई, वह क्या केसर की, धान की क्यारियों में मिलेगी ? क्या यह घाटी षड्यन्त्र का शिकार हो गई है ? ''वीरान शहर के बीच चौराहे पर/जब भी रोकना चाहा उसने/आंधियों को/तो कोई भी चेहरा उसे

दिखा नहीं। देखते ही देखते/रेत का समन्दर/हो गई/बूढ़ी मां/इस शहर की। (पृ० 57) इस लिए अब कवि की अभिलाषा है—

> तुम फेंक आओ अब कहीं
> बाकी बचा हुआ सन्नाटा
> सूनेपन से अपनी मुस्कान वापस लो
> सिर्फ फ़ितरत बदलने से
> सदियों का इतिहास नहीं मिटता। (पृ० 51)

'कोई भी खिड़की खोल दो' (पृ० 47-48) में हिंसा की भाषा विस्फोटक होती है और वहां रक्तपात ही अन्ततः दृष्टिगत होता है। भीड़ तो भीड़ होती है, बुद्धिविहीन सिर-फिरे लोगों की, उसमें से किसी की व्यक्तिगत पहचान करना कठिन होता है अब आवश्यकता इस बात की है कि एक ऐसा शक्तिपुंज, संकल्प की दृढ़ता शरीर में समा जाए जिस के प्रभाव से बाह्य हथियार निष्फल हो जाएं और हमारा सारा भूगोल अविभाजित रहे। ऐसी कविताएं राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करती हैं, देशानुराग को मजबूत धरातल प्रदान करती हैं। कवि की राष्ट्रीय भावना यहां समसामयिक परिवेश में कई प्रकार से अभिव्यक्त हुई है।

डॉ० उपेन्द्र रैणा की लम्बी कविताएं जहां अनुभूति को विस्तृत, व्यापक धरातल प्रदान करती हैं वहां लघ्वाकार रचनाएं उनके गहन चिन्तन को, सूक्ष्म भाव-संवेदना को अभिव्यंजित करती हैं। इनकी सादगी सराहनीय है क्योंकि उस सादगी में गूढ़ार्थ छिपे हैं। एक दो दृष्टांत देना अपेक्षित होगा। "इबारत नजर आती नहीं" में कर्मों का कोई पदचिन्ह दिखाई नहीं देता, मानो कफ़न सब कुछ मिटा देता है, मृत्युपरांत लोग मृतक को, उसके अनिष्टकारक कर्मों को विस्मृत ही कर देते हैं, स्वयं घर वाले उसे भूल जाते हैं। विस्मरण का यह दर्शन भी अपनी पृथक गुणवत्ता संजोए रहता है। एक और सात पंक्तियों की कविता (पृ० 37) में कवि ने वर्तमान अर्थ-संघर्ष-जनित विषमता का रेखांकन किया है चाहे मल्टी-स्टोरी बिल्डिगें खड़ी करके, गगन-चुम्बित भवनों का निर्माण कर वास्तुकला के उच्चतम शिखरों का संस्पर्श कर लें फिर भी झोंपड़ी की समानता वे नहीं कर सकतीं क्योंकि झोंपड़ी धरती से, मानव-मूल्यों से, जीवन के दुख-दर्द से जुड़ी रहती हैं, जबकि उच्च भवनों में मानवीय संवेदना का गला घोंट दिया जाता है। ऊंचा उठना, भवनों को ऊंचा बनाना बड़ा होने की निशानी नहीं, ऊंचा वह है जिसके अन्दर मानवता है, जीवन-मूल्यों की सलिला प्रवाहित होती है। 'धार' शीर्षक से रची गई कविता में समय की धार चाकू की धार से तीक्ष्ण होती है और जंग खाए चाकू के बजाय समय की तीव्र धार से कटना-मरना अच्छा है। वास्तव में समय ही सर्वाधिक बलवान है और उसकी मार से कोई बच नहीं सकता। ये छोटी अर्थ गाम्भीर्ययुक्त हैं उनसे निहित भाव-बिम्ब देखने योग्य हैं। "क्षण हूं निर्विराम" अस्तित्ववादी दर्शन को संदर्भित करने वाली रचना है। 'क्षण' की अपनी अविराम स्थिति होती है। वह अटूट है, अविच्छिन्न है कवि हृदय की वेदना, कालचक्र की गति, प्रश्नोत्तर के मध्य प्रतीक्षा-घड़ी, शब्द-अर्थ में छिपी निस्पंदता का नाम ही "क्षण" है, महाविनाश का भयाकुलित करने वाला सन्नाटा भी वही क्षण है। क्षण काल समय का ही एक अविभाज्य अंग है। क्षण ही ध्वंस और निर्माण कराने की स्थिति है।

'आत्मदाह' की कविताएं भाव-सम्पदा तथा अर्थ-गाम्भीर्य से आपूर्ण हैं उनके अन्दर जो अनुभूत परिवेश चित्रित है वह हृदय को छूने वाला है। भले ही यहां प्रतीकों-बिम्बों की झड़ी न हो, लेकिन अपने सहज रूप में रची ये कविताएं एक अन्तर्सूत्र में संगुम्फित हैं. विशेषकर वे कविताएं जो कश्मीर घाटी के संदर्भों को प्रस्तुत करती हैं। उपेन्द्र रैणा का काव्य-संसार अपनी पहचान खुद कराता है। वह भीड़ में अकेला दिखलाई पड़ता है। उस जैसे युवा कवि, समर्थ-सशक्त कवि और भी होंगे (स्वयं उनके पिता मोहन निराश एक विख्यात हिन्दी कवि हैं और पिता के समान उनका चेहरा-मोहरा भी है, लेखन कला पर भी पिता का प्रभाव है।) पर उपेन्द्र रैणा किसी के न पर्याय है न अनुकृति। वह मोहन निराश के उस गुणात्मक व्यक्ति को व्यंजित करते हैं जो समय बदलने पर अबदले रहते हैं और "हे राम के वस्त्र धारण करने से लेकर/हाय राम की स्थिति तक/वह काटता रहा/समय।" मानो पानी को पानी से पृथक कर रहा हो। ☐

शीराज़ा हिन्दी
आपको प्रिय है।
ज़ाहिर है आप इसे
मुफ्त नहीं पढ़ना
चाहेंगे। चंदा आज
ही भेजिये।

व्यंग्य

नंग बड़े परमेश्वर से

□ रामेश्वर कम्बोज 'हिमांशु'

आदमी संसार में नंगा आया है. संसार से नंगा ही चला जाएगा। जितने समय तक उसे संसार में रहना पड़ता है, सभ्य बनने के लिए उतने समय तक कपड़े पहनने पड़ते हैं। कपड़े पहन कर भी नंगई करना इंसान की मजबूरी है। दरअसल कपड़े तन की नग्नता ढक सकते हैं, मन की नहीं। मनुष्य, ईश्वर का अंश है। ईश्वर का यह अंश कुछ मायने में ईश्वर से भी बड़ा है। परमाणु का महत्त्व छोटा होने से घट नहीं जाता। तुलसी ने कहा था—'बड़े भाग मानुष तन पावा।' कुछ लोग इस दुर्लभ तन को परोपकार आदि में नष्ट कर देते हैं। भला ऐसे जीव, मनुष्य बन कर कौन-सा तीर मार लेंगे ? अगर इस तरह जीवन बिगाड़ते रहे तो भगवान का नाराज होना स्वभाविक ही है। स्वर्ग या नरक में लौटने पर सचमुच बहुत मार पड़ेगी। एक-एक 'किये' का हिसाब मांग जाएगा।

नंगा आदमी किसी की प्रशंसा नहीं सुन सकता। यह बहुत ही उत्तम बात है। हम लोग अपनी अयोग्यता की तरफ से आंख मूंद कर प्रशंसा सुनने के लिए लालायित रहते हैं। अपना काम निकालने के लिए दूसरों की थोथी प्रशंसा में ढेर सारा मूल्यवान समय होम कर देते हैं। नंगी आदर्शवादिता पर चलने वाला व्यक्ति जब किसी की प्रशंसा सुनता है तो उस की स्थिति सन्निपात के रोगी जैसी हो जाती है। दूसरों की प्रशंसा उसके दुबले शरीर को और दुबला कर देती है। नंगेश्वर जी अपनी बीमारी के दिनों में प्रशंसा की मर्मान्तक पीड़ा झेल रहे थे। डॉक्टर उपचार करके हार गए। कई दिनों के बाद रोग की जड़ पकड़ में आई। पांच घोर निन्दक किराए पर लाए गए। इन निन्दकों ने पूरे पांच दिन नंगेश्वर जी के सिरहाने बैठकर निन्दा-स्तोत्र का पाठ किया। ये भले-चंगे हो गए। गालों पर चमक आ गई। सूखी चमड़ी हरिया उठी। अपने मित्रों की निन्दा का स्वाद लेने पर इनका वज़न दस किलो बढ़ गया। शरीर में चीते जैसी फुर्ती आ गई।

नंगा क्या नहाएगा, क्या निचोड़ेगा ? यह कहावत नंगेश्वर जी पर लागू नहीं होती। इन्हें जहां से जो भी निचोड़ने का अवसर मिल जाए, निचोड़ लेंगे। इनके पास जो भी

श्रद्धाभाव से आता है, ये उसके लिए जी तोड़-सिरफोड़ कोशिश करते हैं। अगर ये पचास लोगों को भरोसा दे देंगे तो बीस का काम नियमानुसार हो ही जाएगा। जिन का काम नहीं होगा, उनको समझाने के लिए ऊपर वालों पर आरोप लगाकर गला छुड़ा लेंगे। चाय-पानी के नाम पर फिर भी कुछ न कुछ पैसा काट ही लेंगे।

डॉ० जीवनहरण को ही लीजिए। मैंने पूछा—"दुकान से लोग सौदा लेकर तब दाम चुकाते हैं, आप अपनी फीस पहले ही क्यों ले लेते हैं?"

डॉ० साहब ने आंखें तरेरीं—"तुम्हारी समझ तो लघु कथाकारों से भी गई बीती है। अरे भाई, अगर मरीज़ दवा लेने से पहले ही दम तोड़ देगा तो जांच की फीस लेने के लिए क्या मैं यमलोक जाऊंगा? अगर फ़ीस न लूंगा तो मरीज़ को पाप लगेगा अतः मैं किसी को पाप का भागी नहीं बनाना चाहता। दुकानदार की मिलावट का लोगों के स्वास्थ्य पर तुरन्त प्रभाव नहीं पड़ता इसीलिए उनका बाद में पैसे लेने का आत्मविश्वास बना रहता है। दवाई का प्रभाव तुरन्त हो सकता है, ग्लूकोज़ की बोतल में जोहड़ का पानी है या फफूंदी है इस पर हमारा नियन्त्रण नहीं है। वैसे मरना तो सभी को है। राम के हाथों मरने पर रावण को स्वर्ग मिला था। डॉक्टर के हाथों मरने पर सभी लोग नरक में नहीं जाते कुछ स्थान डाक्टरों के लिए भी आरक्षित होते हैं अतः स्वर्ग में जाना कुछ लोगों की मजबूरी है। आप ही सोचिए—इससे बड़ा पुण्य क्या हो सकता है?"

डॉ० जीवनहरण की बातों में दम था। मुझे उनका लोहा मानना पड़ा।

हर दफ्तर में ऐसे लोग मिलेंगे जो 'कुर्सी' के निकट पहुंचने के लिए मछली की तरह छटपटाते रहेंगे। निकट पहुंच कर ये पूंछ हिलाना शुरू कर देते हैं। कुर्सी जैसा बोलती है ये भी उसी के सुर में सुर मिलाने लगते हैं। इनके शब्दकोश में केवल 'हां, जी' शब्द होता है। यहां तक पहुंचने के लिए इन्हें तरह-तरह की मनौतियां मनानी पड़ीं थीं। कई बार अपनी वफ़ादारी की चादर कुर्सी के मज़ार पर चढ़ाई थी। नई से नई तकनीक का इस्तेमाल करना पड़ा था।

श्री बटरूप जी का जब दूसरे शहर के लिए तबादला हुआ तो अपने भावी बॉस को शहद-सना लम्बा पत्र लिखा। लगता था जैसे इनका जन्म-जन्मांतर का साथ है। बॉस इनकी अन्तरात्मा की तड़प भांप गए। इन्होंने साहब के दफ्तर में अपना बैग रखना शुरू किया। कभी पेन निकालने के लिए, कभी टिफिन या रेजगारी लेने के लिए दफ्तर में जाने लगे जैसे मधुमेह का रोगी बार-बार बाथरूम जाता है। हर बार आशा बंधती थी कि साहब बैठने के लिए कहेंगे, स्टाफ की कानाफूसी के बारे में जानना चाहेंगे परन्तु उधर से प्रोत्साहन नहीं मिला। बटरूप जी मन ही मन कबाब हुए जा रहे थे। धैर्य चुकता जा रहा था। आज तक इतना बड़ा अपमान किसी भी बॉस ने नहीं किया था।

बटरूप जी ने अपनी शक्ति का अहसास कराने के लिए बॉस के खिलाफ लोगों को भड़काने की प्रविधि अपनानी शुरू कर दी। इन्हें विश्वास था कि अब बुलावा आएगा ही। मामला सुलझाने के लिए मेरी सलाह ली जाएगी। बुलावा नहीं आना था, न आया। लोग भी इनकी चालाकी ताड़ गए। बटरूप की सारी भागदौड़ मिट्टी में मिल गई। अब दफ्तर के कोने में बैठे बटरूप जी गुनगुनाते मिल जाएंगे—'ये न थी हमारी किस्मत कि विसाले-बॉस होता अगर और जीते रहते तो वह मेरे पास होता।' दूसरों को नंगा करने में बटरूप जी सब के सामने नंगे हो गए हैं।

हमारे देश में पुरस्कार बांटने वाली संस्थाएं नंगेपन पर उतर आई हैं। पुरस्कार का मापदण्ड बड़ा अजीब है। यहां या तो उसे पुरस्कृत किया जाता है जो बरसों पहले स्वर्गारोहण कर चुका हो या उसे, जो कब्र में पैर लटकाए बैठा हो। कानों से सुनता नहीं, आंखों से सूझता नहीं। बोलने में जबान लड़खड़ाती हो। फालिज मार जाने के कारण शय्या पर लेटा रहता हो। पुरस्कार लेने के लिए उठने में भी असमर्थ हो, सभा में लाद कर लाया जाता हो जब किसी स्वर्गीय साहित्यकार को पुरस्कार देने की घोषणा होती है तो जनता का मुफ्त का मनोरंजन होता है। साहित्य प्रेमियों का ऐसी संस्थाओं से अनुरोध है कि पुरस्कार देने के लिए अपने कुछ प्रतिनिधियों को परलोक अवश्य भेजें। ऐसा करने से जनता में विश्वसनीयता स्थापित होगी।

जो साहित्यकार उपर्युक्त दोनों ही स्थितियों से वंचित है, वह क्या करे? पुरस्कार बांटू संस्थाएं इस ओर से उदासीन हैं। इसे बेहयाई न कहें तो क्या कहें? गली-मुहल्ले वाले लेखक बिना पुरस्कार पाए ही मर जाएंगे तो उनकी आत्मा भटकती रहेगी। इस उदासीनता से खफा होकर डंकासिंह ने जबरदस्त अभियान चलाया। शीरा व्यापारी झम्मक लाल तथा कोयले के डीलर श्री लट्टूमल से चन्दा वसूला गया। सभास्थल पर दोनों दानियों के आदमकद चित्र लगाए गए। ठीक इनके डंकासिंह खड़े हुए। लोग खिसकने लगे क्योंकि काव्य-पाठ खत्म हो चुका था। कुछ लोगों को आंखें तरेर कर डंकासिंह ने रोका। अभिनंदनपत्र पढ़ने वाले सज्जन पहले ही खिसक चुके थे। लचर संवाददाता पान खाने के बहाने एक दुकान पर जा बैठे। उपस्थित लोगों में से कोई भी सम्मान-पत्र पढ़ने को राज़ी नहीं था। कारण डंकासिंह जीवित हैं परन्तु इनका लेखन बरसों पहले मर चुका है। इनकी पुरानी रचनाएं चार पन्ने की मासिक पत्रिका 'दरबारी दुःख' में ही दिखलाई देती हैं।

दयावश एक साथी उठे और अजातशत्रु जी को स्कूटर पर लाद लाए। डंकासिंह को ये कभी फूटी आंख नही भाते क्योंकि ये बहुत अच्छा लिख लेते हैं। किसी का अच्छा लेखन डंकासिंह को बहुत पीड़ा पहुंचाता है। खैर, अजातशत्रु जी ने भारी मन से सम्मानपत्र पढ़ दिया। ग्यारह लोगों ने तालियां बजाईं। पंडाल में थे ही इतने लोग। सम्मान-पत्र डंकासिंह ने स्वयं लिखा था अतः उनके साहित्य का मूल्यांकन 'अज्ञात' जी से इक्कीस ही रहा।

ज्ञानप्रकाश जी परम ज्ञानी जीव हैं। सभी विषयों का ज्ञान इनके कण्ठ पर वास करता है। आप इतिहास की बात करेंगे तो ये भूगोल पर बोलेंगे, पाकिस्तान की चर्चा करेंगे तो ये अमरीका पहुंच जाएंगे। कोई किसी भी विषय पर बोले, ये सुविधानुसार उसके तार अपने ब्रह्मज्ञान से जोड़ लेंगे। देर से आने का कारण पूछिए तो कल की फिल्म की कहानी सुनाना शुरू कर देंगे। 'कहां से आ रहे हो, ज्ञान प्रकाश जी?' का उत्तर होगा—'क्या बताएं चौराहे पर बहुत भीड़ थी। निकलना मुश्किल हो गया। देश में कोई नियम-कानून नहीं रह गया है। सब बेईमानी करने पर उतर आए हैं।'

विषयांतर ज्ञान की महिमा नंगई के मारे रिकार्ड तोड़ चुकी है। ये आत्मविश्वास पूर्वक उन विषयों पर भी घण्टों बोल सकते हैं, जिन की चार पंक्तियां भी कभी न पढ़ी हों। ऐसे सिद्ध पुरुष संसार में कम ही मिलेंगे। इनकी हर बात में गुड़-गोबर का स्वाद मिल जाता है। परमेश्वर महान है इसलिए संसार के सब बेहया लोग भी महान हैं। □

दो उड़िया कविताएं

कभी-कभी

□ डॉ० सीताकांत महापात्र

अनु० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

खिड़की किनारे खड़ी हो
रेलिंग से स्तन दबाए
जब तुम भूखी आंखों से
ताकती रहती हो आकाश
तुम्हारी आंखों में झलकती है
एक और खुली खिड़की।

वहां फ्रॉक पहने एक लड़की
रुआंसी आंखें लिये
एक दूसरे आकाश को ताक रही है
अनजान अबूझ किसी दुर्निवार शोक में।

निर्मेघ और निश्चल आकाश
कुछ सोचता है और
सहसा छुपना चाहता है
राजा बेटा-सा
कमल की अवमानना कर
उस लड़की की निष्पाप आंखों में।

तरह-तरह के खिलौने
छाती में, हाथ में आते हैं
अपने अनजाने ही
पल में महकता है मन
छोटे-छोटे सूने दिन

सपने, पति, बच्चों की तुतली बातें
चारों ओर फैला रहता है माया-मोह ।
खिड़की और लड़की का
वह अनजाना लुकाछिपी खेल
हुआ है, होता है, होता रहता है ।
सालों, युगों तक
बादलों और चिड़ियों की उड़ान में
सपनों और खिलौनों के
आने और टूट जाने में
बीत जाता है अन्तहीन समय ।
कभी-कभी सारा आकाश
लगता है महज़ एक खुली खिड़की
शून्यता के लिए, अन्धेरे के लिए,
आंसुओं के लिए, मृत्यु के लिये,
कभी-कभी एक ही खिड़की
पर्याप्त लगती है
छुपाए रखने के लिए
अपनी नन्हीं छाती में
दिशाहीन आकाश
और आकाश जितना दुःख । □

बचपन

सोचा था तुम्हें छोड़ आया हूं
न जाने कब से चित्रोत्पला किनारे
गरौंची टिटोहरी की झाड़ियों की इल्लियां तितलियां
महापुरुष अगस्त्य, झरबेरी केवड़ा
और कनेर तले ।

जो कुछ हल्का था अब भारी है
तेज ताल, लय अब विलंबित हैं
पर नेवले भैया तुम भी खूब हो
मैं चल रहा हूं सीधे
समय का रास्ता पकड़ कर्म के भरोसे
रास्ता, किनारे, झाड़ी जंगल पार कर
कितनी शान से चुपचाप
चल रहे हो मेरे साथ-साथ तुम।

विवाह की वेदी लांघ
घर द्वार और संसार
चारों ओर बच्चों का लड़ियाना और ठुनकना
कभी-कभी लगता है
''घर-घर खेल'' का घर
झूठ-मूठ के विवाह स्वप्न की देहरी।

वातानुकूलित कमरे में
मृत शब्दों के केंकड़ा-ढांचे के कागज़ से
आकाश को देखता हूं
इल्लियां और तितलियां
पीले दीये-सी उड़ती हैं
ताक की ताक कागज़ों के झाड़ी-जंगल में
टेलीफोन उठाते ही
बादल की आवाज सुनाई देती है
पानी का कल-कल सुनाई देता है
अधिकारी-बिजूका छड़ी मारता है
आश्विन की चांदनी में

अपनी परछाईं देखकर डर लगता है
पर विशाल पृथ्वी लगती है खूब अपनी
मामा का गांव लगता है मानो मंगल-ग्रह
पर नक्षत्रमाला की पगडंडी
सुप्राचीन चांद लगती है
मानो हो हाथ की पहुंच में।

सोचा था, अब तुम्हें नहीं पाऊंगा कभी
कब से खोये हो तुम
तारे-सा, सपने-सा सुदूर क्षितिज में
पर नेवले भैया !
कौन-सा जादू जानते हो तुम
चुपचाप चल रहे हो परछाईं-सा
मेरी शिरा और धमनियों के किनारे-किनारे
मेरी स्नायु के सूने तट पर ।

दो कविताएं

गन्ध के निमन्त्रण

□ निर्मल विनोद

मौन खिलें
मुरझायें मौन
फूलों की लगी !
—भेद, कहे कौन ?
कहे कौन ?
कभी—
बर्फ़ मौसम का
यख-ठण्डा प्यार है
कभी—
जेठिया दोपहरी का अभिसार है
इठलाये, मन्द-मन्द बहे कभी सहलाये
सन्-सन्-सन्-सन् कभी
झकझोरे 'पौन'
फूलों की लगी !
—भेद, कहे कौन ?
कहे कौन ?
अनदेखी खुशबू की
भेजा चिट्ठी करें
तबियत खट्टी न कभी करते
'मिट्ठी' करें
गन्ध के निमन्त्रण को समझ कहां पाते वे—?
जो अधर-नयन में—
पायें मिठास
चखें 'लोग'
फूलों की लगी !
—भेद, कहे कौन ?
कहे कौन ?

उपराम रहा मौसम

अनचाहे ही भटक रहा हूं क्यों ?
मैं, अन्तर के बीहड़ वन में !
कितने आरोप लगे मौसम पर,
लेकिन उपराम रहा मौसम ।
यश-अपयश से वह ऊपर सदा,
यों दिखा न सालते उसे गम,
टूटते न कभी गया देखा,
अपराजित जगता उसका दम ।
उसकी मुस्कान छद्म तो नहीं ?
—प्रश्न कुलबुलाता रहता है,
जस का तस बना सदा मन में ।
अनचाहे भी भटक रहा हूं क्यों ?
—मैं, अन्तर के बीहड़ वन में !
कितने आवर्त्तों में घिरा मगर,
बच कर हर बार निकल आया ।
झुंझलाना जैसे सीखा नहीं,
किसी बात पर न तिलमिलाया;
उसने बस सीटियां बजायीं,
सदा भरे मस्ती में गाया ।
मौसम वरदान लिए जन्मा क्या ?
सूरज से बढ़कर लगता है,
निष्प्रभ होता न कभी घन में ।
अनचाहे ही भटक रहा हूं क्यों ?
—मैं, अन्तर के बीहड़ वन में

दो कविताएं

अब कैसी हो डल झील तुम ?

☐ अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'

आज पूरा चांद कार्तिक का
हल्की-ठिठुरन ले
फिर उगा है
आकाश में
याद आ गयीं मुझे
तुम डल झील।
दो बरस पहले
हम दोनों साथ थे—
शिकारे में बैठ
झूमते हुए
तुम एक शांत
उदास
युवती की तरह
बार-बार मुझ से
कुछ कहना चाह रही थीं
लेकिन, न जाने क्यों

क्या सोच कर
खुल न सकी
मेरे सामने,
एक प्रतिबिम्ब पूर्णिमा का चांद था
जब शिकारे में
उतरने लगा
तब अचानक ही
रुख मोड़ दिया था तुमने
शिकारे का
हर इंसान-बेरुखी से
भटकन से, जुड़ा नहीं होता
बंधी हुई दीवारों का
अक्स नहीं होता,
चार-चिनार के दश्त सा
जुनून होता है ।
शरद-पूर्णिमा की उजली छुअन
से
कांप गई थी जब तुम
हृदय ने
भविष्य की धूप से
खिला दी थी
केसर क्यारी-भरपूर
हल्के-हल्के बैंगनी फूलों से,
तभी एक लड़की ने
दूसरे शिकारे को
पास करके बढ़ा दी थी
खिले फूलों भरी डलिया
मेरी तरफ
और-आंखों में
भर दी थी

एक याचना
निःशब्द।
तब-भी तुम शांत थी
जब उसी बालिका ने
हौले से चप्पू चलाकर
कहा था, 'खुदा हाफिज
और बांट गई थी
बिना कुछ लिए हुए
इतना प्यार
बसा है जो तुम्हारे हृदय में
फिर भी चुप हो
क्यों ?
एक बार मैं फिर लौटूंगी
तुम्हारे पास,
शंकराचार्य की सीढ़ियां चढ़ने से पहले
तब तक—अपना हाल
भेजती रहना
अब कैसी हो तुम डल झील !
अब तुम कैसी हो !!

□

नियति

पहाड़ों से उतर कर
जब-जब घाटी में आयी
ऊपरी सतह

धुंध से भरी

अपनत्व से भरी

फिर से आमंत्रित करती सी लगी,

उस शैल-शिखर पर

अनमोल जीवन है

सांसों से जुड़ता

अपना घर है

जिसे कल्पना कहा जाता है

अलौकिक छटाओं से

भरपूर नेह

बादामी-फूलों सा जड़ा

महकता,

स्पर्श से खिलता

मुस्कुराता है

प्रकृति की अद्‌भुत्‌ प्राणदायिनी

लहर

हृदय में बस गई है

अनंत

'पत्नी टाप' का 'व्यू पांईट'

अविरल गति से

बढ़ता जा रहा है

सामने

सरहदों की शिनाख्तों के बीच

यहाँ घाटी में घाटी नहीं

बहाव की शक्ति है

जैसे पहाड़ों पर थिरकती धूप

नदी सी बहती हो,

तारकोली-सड़क के मोड़

ढांप लेती हैं बर्फ़

और पर्यटकों को मोहती है

पर—मुझे—इस दृश्य ने
स्वप्निल-आकाश दिया
जहां-उत्साह और यात्रा है
अनंत,
जब-तक पहाड़ हैं
ये छटा अतुल है
बाकी तो काल चक्र की
नियति है ॥

□

दो कविताएं

अभी फकत....!

□ बालमुकुन्द गर्ग

अभी
फकत जानता है
कुलांचे भरना ही
हिरण
अपने चार चरणों में ही
सिमटी लगती है
उसे धरती...!
उसकी सोच है कि
आकाश थमा हुआ है
तो महज इससे कि
उसने अपने अभी-अभी
उगे सींगों पर—
—थाम रखा है उसे !
उसकी बढ़ती आंखों
की कृपा-कोर पर
निर्भर है जंगल की
वानस्पतिकता...!
अभी हिरण ने
देखी नहीं है
धूप कंवार की
उसका साबका नहीं
हुआ है—
वनराज की आंख के
अंगार से !
अभी परिचित
कहां है वह प्यास से !
अभी फकत
जानता है।
कुलाचे भरना ही
हिरण !

लोग और लोग....!!

कुछ लोग
नहीं बनते हिमालय कभी
न कभी गंगा ही...!
और तो और वे
बनते नहीं विंध्याचल
न ही नर्मदा !
न ताउम्र पखारते हैं
चरण ही पर्वतों के...!
ऐसे लोग
हमेशा यह जरूर
बताते हैं सभी को
कि चाहो तो
ठान लो
तो
पा सकते हो
विंध्याचलत्व !
ऐसे लोग
जुटे रहते हैं हमेशा
गढ़ने में ऊंचाइयां
और करते हैं कोशिश
कि गढ़ जाए कुछ
बन जाए, रच जाए कुछ
कुछ ऐसा कि
लोगों को उसे देखने हेतु
अपनी गर्दनें ऊंची उठानी पड़ें...!
और कुछ लोग
न बनते हैं
न चाहते हैं बनना
फकत घने वृक्षों की छांह में
ज़िन्दगी भर देखते हैं
बैठे-ठाले सपने बांझ !
जो गढ़ रहे हैं
रच रहे हैं
उनकी खींचतें हैं टांग...!!

कहानी

कहने वाला कहता है

☐ महाराज कृष्ण संतोषी

आज हीमाल बहुत खुश थी। कुछ ही महीनों में वह मां बनने वाली थी। क्लीनिक से बाहर निकलते ही नागराय ने एक ऑटोवाले को इशारा किया। वह आया भी लेकिन हीमाल ने ऑटो में बैठने से साफ इंकार कर दिया।

"लेकिन क्यों?" नागराय ने पूछा। हीमाल ने उत्तर दिया कि वह कुछ देर के लिए पास के चिनार बाग में सुस्ताना चाहती है। नागराय मान गया। वास्तव में चिनार के पेड़ों पर फ़िदा थी हीमाल। वह चिनार के पत्तों को अपने जीवन का एक अंश समझती थी। दोनों टहलते-टहलते चिनार बाग पहुंचे और सब्ज़ार पर लेट गए। दोनों के भीतर एक सांझा स्वप्न अंकुरित हो चुका था।

"इन चिनार के पेड़ों में आखिर क्या है जो तुम इन पर इतना प्यार लुटाती रहती हो" नागराय ने पूछ ही लिया। हीमाल मुस्कराई और नागराय ने उसके मुस्कराते अधरों का चुम्बन ले लिया।

"कहो न हीमाल" नागराय ने आग्रह किया।

"मुझे ये चिनार इसलिए इतने प्रिय लगते हैं कि जहां अन्य पेड़ पतझर देखते ही पीले पड़ने लगते हैं, वहां चिनार के पत्तों में कितनी लाली आ जाती है। पतझर में चिनार के ये लाल-सुर्ख पत्ते बिल्कुल आग की तरह दिखाई देते हैं - दिव्य आग की तरह। मैं भी मृत्यु के सम्मुख इतनी ही दिव्य होना चाहती हूं" हीमाल काफी भावुक हो उठी थी।

"मैंने सोच लिया है..." अधूरा वाक्य ही बोल पाई थी हीमाल कि नागराय ने अपनी उत्सुकता प्रकट की।

"क्या सोच लिया है।"

"यही कि मैं अपने पुत्र का नाम चिनार रखूंगी।"

यह सुनते ही नागराय हंसने लगा। हंसते हुए वह संस्कृत नाटक के विदूषक की तरह लग रहा था।

"इसमें इतनी मूर्खता से हंसने की क्या बात है?" हीमाल ने नाराजगी भरे स्वर में कहा।

"नहीं. ऐसी बात नहीं। मैं हंस रहा था कि आप ने कैसे मान लिया कि हमारा बेटा ही होगा। बेटी भी तो हो सकती है" नागराय ने सफाई देने के अन्दाज़ में कहा।

"हां, यह बात तो है" हीमाल ने धीरे से कहा।

"अगर लड़की हुई तो तुम उसका क्या नाम रखोगी?" नागराय ने पूछा। हीमाल सोच में पड़ गई। नागराय हथेली पर घास के तिनकों को जमा करता रहा।

"सोच लिया कोई नाम?"

"नहीं।"

"मैंने सोच लिया है।"

"क्या?"

"वितस्ता!"

●

अखबारों में सनसनी और उत्तेजक खबरें छपने लगी थीं। बंदूक सीमा पार कर चुका था। घाटी में हत्याएं ..जुलूस...जनून...सब मे वृद्धि होने लगी थी लेकिन हीमाल-नागराय अपनी बेटी के प्यार में इस तरह डूब गए थे कि उन्हें बाहर की खबरें बचकानी लगतीं। नागराय ने बेटी के जन्म पर एक कविता भी लिखी थी। हीमाल ने वह कविता कंठस्थ कर ली थी। दोनों कई बार विनस्ता को सुना चुके थे यह कविता।

"हमारी वितस्ता इतिहास की प्रोफेसर बनेगी" एक दिन नागराय ने हीमाल से कहा।

"नहीं, वह वैज्ञानिक बनेगी। मैडम क्यूरी की तरह एक वैज्ञानिक।" हीमाल ने विरोध किया।

"नहीं वह प्रोफेसर ही बनेगी। कश्मीर-इतिहास पर एक विशेषज्ञ प्रोफेसर।"

"नहीं वह......"

किसी ने द्वार खटखटाया। हीमाल ने वितस्ता को बिस्तर पर लिटाया और ऊपर मखमल की लिहाफ़ डाल दी। नागराय ने द्वार खोला। एक दढ़ियल नवयुवक सामने खड़ा था।

"पुलिस मुझे ढूंढ रही है। मुझे अपने घर में कहीं छिपा लो" नवयुवक के स्वर में अनुरोध कम अधिकार अधिक था। उसने जानबूझ कर अपना फिरन थोड़ा ऊपर खींच लिया

ताकि भीतर छिपी बंदूक की झलक दिखाई दे। नागराय ने नवयुवक को अपने पढ़ने वाले कमरे में छिपा लिया।

"खाना खाएंगे आप ?" उसने संस्कारवश नवयुवक से पूछा।

"नहीं" नवयुवक ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

●

रात गहराने लगी थी। पड़ोस के घरों में रोशनी बुझ चुकी थी। जनवरी की ठिठुरती ठंड हीमाल-नागराय की हड्डियों में पूरी शिद्दत के साथ उतर रही थी।

●

मुल्ला की बांग से हीमाल जाग गई थी। वह बिस्तर से उठी और कांच की खिड़की से बाहर झांकने लगी। बाहर बर्फ की एक हल्की परत से धरती ढक गई थी। आंगन का सामने वाला फाटक खुला पड़ा था। उसने पति को जगाया। नागराय हड़बड़ा कर उठा।

"क्या है !" उसने पूछा।

"लगता है नवयुवक चला गया है" दोनों कमरे की तरफ धीरे-धीरे और होशियारी से चलने लगे। दरवाज़ा खुला पड़ा था। तख्तपोश पर बिछी चादर पर नवयुवक के बदन की सिलवटें मौजूद थीं। कलेण्डर से एक कागज़ चिपका हुआ था जिस पर लिखा हुआ था "... . डॉग्स' नागराय ने कलेंण्डर से चिपका कागज़ उतार लिया। उस की चिंदी बनाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया लेकिन यह सब करते हुए वह भीतर-ही भीतर बहुत डर रहा था

●

"इन दिनों आप काफी पढ़ते हैं। वह भी कश्मीर हिस्ट्री।" हीमाल ने नागराय से कहा। नागराय ने अपनी ऐनक गब्बे पर रखते हुए कहा।

"हां, इन दिनों हिस्ट्री पढ़ने की काफी ज़रूरत है।"

हीमाल पति के और निकट सरक आई। उसने अपने हाथों में पति का ठण्डा हाथ लिया और कहा।

"मैं एक बात कहूं।"

"हां, कहो।"

"अब हमारी ज़िन्दगी यहां सुरक्षित नहीं है। हमारी बिरादरी के सारे लोग पलायन कर चुके हैं। हमारा अपना कोई सम्बन्धी भी तो नहीं रह गया है यहां अब। महागणेश न करें, हमें कुछ हुआ तो लाश फूंकने वाला भी कोई नहीं होगा।"

"नहीं हीमाल ! हम कश्मीर की लोक कथा के नायक-नायिका हैं। हम कश्मीर त्याग नहीं सकते।" हीमाल चुप रही। वह अपने पति को उदास नहीं देखना चाहती थी। वाता-

वरण में कुछ देर के लिए मौन छाया रहा। हीमाल ने नागराय की गम्भीर आंखों में अपने अतीत का दर्पण देख लिया था। उसके अन्दर एक आशंका बज उठी थी। वह अपने अन्दर के सतीसर में हज़ारों वर्ष पीछे तैर गई थी।

"क्या तुम पहले की तरह खो तो नहीं जाओ गे!" हीमाल ने मौन तोड़ते हुए कहा।

"नहीं ! तब मेरी अनेक रानियां थीं। लेकिन अब... ।"

"अब क्या ?"

"अब तो मेरी एक ही रानी है। वही जो वितस्ता की मां है।"

"अपनी पत्नी कहते हुए लज्जा आती है।"

नागराय चुप रहा। पता नहीं वह कहां खो गया था ? क्या सोच रहा था ?

सात दिनों के लगातार कर्फ्यू के बाद आज पांच घंटों के लिए कर्फ्यू में ढील दी गई थी। लोग सड़कों पर सहमे-सहमे से आ जा रहे थे।

नागराय भी हड़बड़ी में घर से निकला। उसने कोट की जेब में कपड़े का थैला रखा और बगल में कुछ किताबें दबाए वह सीधे कालिज की तरफ तेज़-तेज़ कदमों से चलने लगा। जनवरी भी समाप्त होने को थी मगर अभी तक दिसम्बर का वेतन नहीं मिला था। कई दिनों से हाथ भी तंग चल रहा था। कालेज पहुंचते ही वह सीधे कैशियर के पास गया। कैशियर गुलाम नबी ने 'आदाब प्रोफेसर साहब' कह कर उसे तनिक आश्वस्त किया। पूरे साढ़े चार हज़ार रुपये जेब में रखे और नई किताबों का पुलिंदा बगल में दबाए वह प्रसन्नचित्त लौट रहा था अपने घर कि......

●

नहीं, नहीं, मुझे नहीं मालूम नागराय को किसने मारा। मैं कह नहीं सकता कि वह सिपाहियों की गोली से मरा कि ····· की। मैं कैसे कह सकता हूं ? मैं घटनास्थल पर जब था ही नहीं। लेकिन कहने वाला कहता है। वह दोनों ओर की गोलियों से मरा। उस के लथपथ शरीर के पास ही चन्द किताबें बिखरी पड़ी थीं। उन किताबों का नाम क्या था मैं नहीं जानता लेकिन कहने वाला कहता है; उन किताबों में सिर्फ शब्द नहीं थे। उनमें कश्मीर की आत्मा भी थी।

●

नागराय की हत्या के बाद भी हीमाल अपना घर छोड़कर नहीं भागी। वह अब भी लोककथा को बचाने के प्रयत्न में थी।

उसके पास चोरी-छिपे कुछ लोग सहानुभूति प्रकट करने आते। हीमाल नागराय की हत्या के विषय में अखबारों में छपी खबर पर काफी क्षुब्ध थी। वह सोचती रहती थी। क्या नागराय अकेला मरा था ? क्या उस के साथ हीमाल विधवा नहीं हुई थी ? वितस्ता अनाथ नहीं हुई थी ?

●

क्या...? द्वार पर दस्तक हुई। एक बुजुर्ग दरवाजे पर खड़ा था। हीमाल ने दरवाजा खोला और वह बुजुर्ग अन्दर चला आया।

"बेटी! मैं तुम्हारा कोई नहीं; लेकिन तुम मुझे अब्बा कह सकती हो।"

हीमाल चुप रही। बुजुर्ग थोड़ा धीमा, थोड़ा हांफते हुए बोल रहा था जैसे वह दमे का पुराना मरीज हो।

"मैं जानता हूं तुम्हारे नागराय पर गोलियां किसने चलाईं।"

"किस ने चलाईं?" उत्तेजित स्वर में हीमाल ने पूछा।

"मैंने।"

"नहीं, नहीं, तुम मेरे नागराय पर गोलियां कैसे चला सकते हो। तुम तो बुजुर्ग हो।"

"मैं सच कहता हूं बेटी! मैं ही वह गुनाहगार हूं..." आंखें पोंछता हुआ और बीच-बीच में खांसता हुआ वह बुजुर्ग कह रहा था।

"...नागराय मेरे घर के पास से गुजर रहा था कि अचानक भगदड़ मच गई। लोग इधर-उधर भागने लगे। तुम्हारा नागराय भी भाग रहा था कि सामने फायरिंग की आवाजें सुनाई दीं वह पीछे लौट आया। मैं छत से देख रहा था। मैंने वहीं से उसे इशारा किया कि वह भीतर आ जाए। सोचने का वक्त नहीं था। जान बचाने के लिये कहीं पनाह लेना जरूरी था और उसे मैंने अपने घर में पनाह दी।

पुलिस ने सारे क्षेत्र का घेराव किया। घर-घर तलाशी हुई। हमारे घर में भी पुलिस घुस गई। वे मेरे अकेले पुत्र को ले जाना चाहते थे। वह पकड़ लिया जाता तो उस की मां फिर जिन्दा नहीं रह पाती। मैंने नागराय को अपना दूसरा बेटा बताते हुए पुलिस वालों से उसे ही ले जाने के लिये इलतिजा की। इससे पहले कि नागराय अपनी जुबान खोलते, पुलिस वाले घसीटते हुए उसे ले गये। सामने के चौक पर फिर फायरिंग हुई और नागराय..." इसके बाद न वह बुजुर्ग कुछ कह पाया और न हीमाल ही कुछ सुन पाई। वह सुनते-सुनते शून्य हो चुकी थी जैसे।

बुजुर्ग उसे उस के हाल पर छोड़कर चला गया। वह अगले दिन फिर आया लेकिन हीमाल घर छोड़कर जा चुकी थी।

कहने वाला कहता है कि वह रोज हीमाल नागराय के मकान तक आता और रोता हुआ लौट जाता। वह जितने दिन भी जिन्दा रहा अपने को हीमाल-नागराय की लोक कथा का खलनायक मानता रहा। □

कहानी

ज़िंदा संकेत मुर्दा संकेत

□ डॉ. रतनलाल शांत

रेलगाड़ी का सफर करते हुए उसने हमेशा मुक्ति का अनुभव किया है। मुक्ति—परिचित से और आसक्ति से—कुछ परे के लिए ही सही। नये अनागत और अचानक के प्रति बेझिझक बढ़ने की स्फूर्ति, क्योंकि रेल की निर्व्यक्तिक व्यवस्था कोई झिझक या ना तैयारी नहीं समझती। आप एक द्वार बैठ गए तो पहुंचा कर दम लेगी।

पर यह सब उसने साधारण यात्रा के दौरान सोचा है। इस समय क्या सोच रहा है वह ? क्या सोच सकता है ? बस इतना भर कि पहचाने क्षेत्रों से दूर ले जा रही है। दूर, कहीं भी। और वह ज़िंदा बचा है।

दनदनाती गाड़ी के शोर में ठहाकों और अपरिचित बोलियों से वातावरण कितना सुरक्षित है उसके लिए। और जब कहीं से कोई अपरिचित लय हवा में तैरती आ जाय तो डिब्बा आत्मीय हो उठता है। उसने चारों ओर एक हमदर्दी भरी नज़र दौड़ाई। लोग, ठुंसे धंसे, भरे लोग—आखिर अपने ही देश के अपने जैसे लोग। देश से वतन जाते हुए या वतन से देश। समय से होड़ लेती रही गाड़ी और उसे लगा कि ज़िंदगी लौट रही है।

पर यह ज़िंदगी गई कहां थी जो अब लौट रही है। उसने अपने आप को झिंझोड़ा—यह ज़िंदगी और आत्मीयता धोखा है। ऊपरी सीट पर लदे सामान के बीच में वह भी सामान के एक नग की तरह पड़ा है तीन दिन, दो रात से। ज़िंदा तो है यह सामान और वह खुद एक नग मात्र है। ठीक है जब वह अपने घरबार तथा घर में संभाले सामान को अपना न बना सका और सब कुछ छोड़छाड़ कर भाग आया कि जीता रह सके, तो फिर अब यह सामान के बारे में सोचना क्या ? पर बिना चीज़ों के जीते रहने का मतलब क्या ? मोह के बिना जीना क्या ? जीने का ही सही मोह ही था उसे। नहीं तो मारे गए उस पड़ोसी की

तरह वहीं रह लिया होता और किसी दिन बहुमत से सहमति जतलाने के लिए जुलूस के आगे ढाल की तरह इस्तेमाल हुआ होता—बरसती आग के सामने मानवीय ढाल की तरह।

वह इस तरह की सोच से डरता है—बेसोचे बात करना खतरनाक हो सकता है—कौन जाने उसका पीछा यहां तक हो रहा हो। अब वह जम्मू से बहुत दूर निकल आया है, पर बंदूकियों के कारनामे उसके जाने थे, भोगे थे—यह भी वह भुला नहीं सकता था।

वह बेहरकत गुपचुप पड़ा रहा—नगों के बीच नग की तरह !

आधी रात तक उसे नींद नहीं आई। यात्री बैठे, अधलेटे, खड़े दीवार से टेक लगाए ऊंघ रहे थे। गाड़ी की दनदन को छोड़ अब भीतर डिब्बे में कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। सन्नाटा। और अकेला वह जाग रहा है—अतीत से कट जाने से मुक्ति का अनुभव करता हुआ।

वह कहां उतरेगा ? अचानक यह सवाल उठा। टिकट उसके पास है नहीं। चेकर पकड़ेगा तो जुर्माना वसूल न कर पाने पर किसी जेल में डलवा देगा। उसने सन्तोष की सांस ली। ईश्वर करे ऐसा ही हो जाए ! दो तीन महीने कटेंगे—किसी को खबर भी नहीं होगी कि कहां है—पर काश चेकर आ जाये—तीन दिन हुए गाड़ी को चलते हुए और हमारी व्यवस्था का यह हाल है कि आम डिब्बे में भी चेकिंग नहीं होती।

मगर जब उसे कहीं से ऐसी आवाज़ें सुनाई दीं जो वह पहचानता था तो पहली बार उसे लगा कि उसके इन सहयात्रियों की बोली औरों की तरह उसके सिर और कंधों के ऊपर से गुज़र कर निकल नहीं रही, बल्कि उसके कानों में सीधे पैठ रही है। उसके कान खड़े हो गए। उसने बिना आवाज़ किए सिर उठा लिया और लगभग अन्धेरे में बोलने वालों को नज़रों-नज़रों में खोजने लगा। कुछ दिखा नहीं। शायद उसे झपकी आई थी और उसके स्वप्न में कोई बोला—कोई जो उसे कंधे पर संगीन धरे गांव-गांव खेत खेत खोज रहा है। वह फिर उस समुद्र के रेतीले किनारों पर खो गया, जिसे उसने अपनी सुरक्षा के लिए कल्पित किया था और जहां यह रेल गाड़ी उसे पहुचा रही थी। परिचित बोली की आवाज़ें फिर आईं और वह फिर चौकन्ना हुआ। अब आंखें खुल गईं। वह धीरे-धीरे उठ बैठा। नहीं, अब और बेवकूफी नहीं। वह बिना आवाज़ पूर्ववत् लेट गया। दाढ़ी मूंछ बढ़ा कर और मुंह पर ताला लगाकर तीन चार दिन से जो भेद उसने बनाए रखा है—जैसे जादूगर अपना जीव दूरके किसी पशु पक्षी में रखकर सुरक्षित घूम फिर सकते थे वही अब आधी रात को इस भीड़ में खुल जाने दे ? नहीं।

आवाज़ें साफ आ रही थीं। दो जने बतिया रहे थे। शायद पैर फैलाकर सोने के लिए काफी जगह न पाकर बैठे-बैठे रात काट रहे थे वहीं। उनको देख लेना होगा। कैसे देखा जाए ? इतने में एक ने माचिस जलाई—कांपती लौ में चमकती उन की आंखें दिखीं—ये वे आंखें नहीं थीं, जिन से वह अपरिचित था और अगल-बगल के हम सफरों की जिन आँखों में झांक कर तीन दिन वह सिर्फ अपने अनिश्चित अनागत की कल्पना करता रहा था। ये वह आंखें थीं जिन्हें उसने पहचाना। इनमें उसके परिचित जीवन की तस्वीर थी—खुली और असंदिग्ध।

"ले जला एक और सिगरेट यहां कौन साला टोकने वाला है ?" एक ने दूसरे से ऊंची आवाज़ में कहा और उसने रेल की गड़गड़ाहट में साफ-साफ सुना ।

अपने यहां के लोग थे। पर अभी तक इन पर नज़र क्यों नहीं पड़ी उसकी ? वह हर घण्टे दो घण्टे चढ़ने उतरने वालों, पुराने नए मुसाफिरों को ध्यान से देखता रहा है—सीट पर से कहीं, सामान की बर्थ की ऊंचाई पर से सामान में छिपा-छिपाके—एक किले के भीतर सुरक्षित आड़ लिए सिपाही की तरह । ये लोग जम्मू से ही बैठे हैं, कहीं बीच में नहीं चढ़े । लगता है कि हिंसावादियों के प्रतिबंधों की मारके मारे हैं । वह निश्चित होकर और कोई वार्तालाप सुनने की प्रतीक्षा करता रहा पर गाड़ी का शोर बढ़ा, स्टेशन आ गये, कुछ उतरे तो हड़बड़ी मची, कुछ चढ़े तो उन्हें रोका गया और फिर एक बार उनके घुस आने पर उनको अपने बीच में ही बैठा दिया गया सारे रास्ते पर वह कुछ सुन न सका ।

इतना जानना काफी नहीं । बार-बार सिगरेट जलाने के लिए माचिस जलाते तो उनकी आंखें दीप्त हो उठतीं । वह दूर से ही सही, अब उन आंखों के संकेतों में बहुत कुछ पढ़ चुका था ।

उसे अगले स्टेशन पर उतर जाना चाहिए । पर यदि वे भी उसके पीछे उतर गये तो दस दिन आप ही उसके बूढ़े मां-बाप को जम्मू में खबर मिल जाएगी कि उसकी लाश पाई गई है ।

उन्होंने उसकी ओर एक बार भी नहीं देखा । अन्धेरा था. डिब्बे में कुछ जगहों पर बत्तियां न होने से अन्धेरा हो रहा था । पर उनका उस की तरफ नहीं देखना किस सुरक्षा की गारंटी है । उसने नज़रें उधर ही जमाए रखीं । वही मुद्रा बनाये रखनी होगी जिसने अभी तक बचाये रखा । वह निश्चेष्ट पड़ा रहा । बक्सों और सीखचों की चुभन के सहारे जागता हुआ—सावधान ! सावधानी में ही सुरक्षा है और अब जबकि वह बचा चला आया है इतनी दूर, अब इतनी आसानी से जान गंवा दे ? नहीं यह रात उस रात से मुश्किल तो नहीं जब वह एक पूरा दिन खेतों में घास के बीच लेट कर बिताने के बाद रात को भागता रहा था । दोस्त के घर से जब बाथरूम के पिछले रोशनदान से बाहर कूदा था तो गोलियों की आवाज़ें दूर तक कानों में गूंजती रही थी । मेज़बान दोस्त का क्या हश्र हुआ यह आज तक उसे मालूम नहीं हो सका था । खेत में लेटे-लेटे या निर्जन ऊबड़ खाबड़ में घिसटता सिर्फ गोलियों की धांय-धांय सुनता रहा था । एयरपोर्ट रोड़ को उस पुलिस चौकी में जब उसे ज़ोरदार थप्पड़ मार कर होश में लाने की कोशिश हुई तभी उसके कान में आवाज़ें बंद हुई थीं और वह जान गया था कि बेहोशी की हालत में उसे किसी खड्ड से उठा लाया गया था ।

दो जने थे वे भी । जिन्होंने अचानक उसके मेज़बान के आंगन में घुस कर उससे बहस छेड़ी थी । उसका दोस्त ऊपर मकान की खिड़की से देख रहा था । वहीं से चिल्लाया—भागो, तुम्हें मारने······और वह मकान की ओर लपका । बाथरूम में भीतर से खुद को बंद किया दरवाज़े पर बाहर से गोलियां बरस कर भीतर दीवार को छेद रही थीं कि वह रोशनदान से लटक गया था ।

नहीं, उससे बढ़कर क्या खतरा होगा अब ?

जाने कब उसकी आंख लगी थी और कब खुली तो पहली नज़र उस कोने की तरफ़ डाली जहां से परिचित बोली सुनाई दी थी, जो बोल उसके कंधे कानों के ऊपर से गुज़र कर नहीं निकले थे पर उसके कानों में सीधे बैठ गए थे।

सीटें खालीं थीं। उसने राहत की लम्बी सांस ली और सोचने लगा कि रात भर उसने क्या-क्या अंदाज़ें लगाए—क्या सन्देह जगाए। अब तो वह उस सब से तीन दिन और डेढ़ हज़ार मील दूर है। उस सब से जिस का मूल उस की इस इच्छा में था कि भयातुर होकर छोड़ी दुकान का कुछ सामान श्रीनगर से ले आया जा सके तो कहीं कोई ठिकाना जमाया जा सकता है। आखिर तीन महीने बेकार भटकने से मिला क्या। जो जमा पूंजी थी घर में लगा रखी थी। वह भी नई दुकान तो अब वह खोल नहीं सकता था। बाज़ार के पड़ोसी-दुकानदारों की सुरक्षा की तसल्ली के बावजूद जब एक दिन एक नौजवान बेबात पर उसे धमका गया कि गाहकों का खून पी चुके हो, उन का खून तुम पर कर्ज़ है। और फिर हमदर्द दोस्तों ने उसे शहर छोड़कर चले जाने की सलाह दी तो सलाह उसने मान ही ली। और अब जो तीन माह बाद उन की ही सलाह लेकर दुकान खोलने की गर्ज़ से गया था तो किसी का क्या बिगाड़ा उसने। कहां से आईं दो बंदूकें और क्यों पड़े उसकी जान के पीछे! उसे दोस्त के डेरे तक खोजते आ पहुंचे थे।

अब वह सामान की बर्थ से नीचे उतरा। तीन दिन से परिचित अनजान हमसफ़रों के साथ मुस्कान का आदान-प्रदान किया और खिड़की पर जा बैठा। गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी हो गई थी। उसका सिर भन्ना रहा था। होठों पर जीभ फेरी। किसी से कुछ मांगने की हिम्मत नहीं हो रही थी। दस बातें पूछेंगे और जांचेंगे।

इतने में किसी ने खुद ही पानी का गिलास पकड़ा दिया। अब उसने देखा कि गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी थी और वे दोनों खिड़की के बाहर खड़े थे, जिन की आंखों में उसने अनागत नहीं देखा था बल्कि अपने अतीत की झांकी पाई थी। अब ? उसकी नसें तन गयीं और किसी भी संकेत का इन्तज़ार करने लगीं।

' गर्मी बहुत है। पियोगे ?'' उनमें से एक बोला जो गिलास लिए था। उसने पानी लिया और गटागट पी गया। दूसरे ने सिगरेट दी और सुलगा भी दी—

''पी लो, यहां कौन साला टोकने वाला है ?''

वह रोबोट की तरह उनका कहा मान रहा था। एक मासूम बच्चे की तरह उनकी रौबीली मुद्रा की मार भी सह रहा था और प्यार की आकांक्षा में निरीह होकर बैठा था।

''लगता है कुछ ज्यादा ही जुल्म हुआ है तुम पर ?''

वह सावधान हुआ। वह उस क्षण भूल ही गया कि यदि वह उन की आंखें पढ़ सकता है, वे भी तो उसके हज़ार छद्मता के बावजूद उसकी आंखें पढ़ सकते हैं। उसने जवाब नहीं दिया बल्कि उलटे प्रश्न किया—

''कहां जाएंगे आप लोग ?''

"कहीं भी। अपना मुल्क है। मंदिर में पड़े रहेंगे। भगवान जी के दरबार में भूखों नहीं मरेंगे।"

मंदिरों और भगवानों भरे इस देश में जान लेकर भागते हुए उसने कभी ऐसे आश्रय की कल्पना नहीं की थी—उसे ताज्जुब हुआ।

"पढ़ते थे ? छोड़ कर आ गए ?" अब उसे हिम्मत जुटा कर पूछते ही रहना होगा।

पहला उसकी ओर जैसे झपटा—"पढ़ लिखकर फ्रस्टेट होना था, पंडित जी ? अस्सी नव्वे पर्सेंट लेकर भी मिला किसी को वहां एडमिशन ? और हंस पड़ा।

इतने तीखे तीर की मार को इस तरह हंस कर व्यक्त किया जा सकता है, यह उसने पहली बार देखा। और "पंडित जी" का संबोधन ? उसके लिए आखिरी संकेत था।

चार दिन पहले बाथरूम में उसे अपना निशाना बनाने से पहले उससे यही संबोधन दिया था। उन दो युवाओं ने। जो अचानक आंगन में घुस आए थे और सीधे उससे पूछने लगे—"तुम्हारा नाम क्या है, पंडित जी ?"

मारने से पहले वे शिकार के मुंह से अपने सही होने की तसदीक कराना चाहते थे और वह उन अचानक और अप्रत्याशित आए मेहमानों को तर्क से पछाड़ने लगा था—"क्यों पूछते हो मेरा नाम ?" और अचानक आक्रामकों में से एक बोल उठा था—

"तुम अवतार किशन हो ना पंडित ? बड़े बाज़ार में दवाइयों की दुकान है तुम्हारी। कुनबे को जम्मू बिठा आए हो और अब सामान लेने आ गये हो।"

वह अचम्भित खड़ा हो गया कि अब क्या कहे कि ऊपर की खिड़की से उस का मेज़बान दोस्त चिल्लाया था कि भागो, तुम्हें मारने आए हैं।

तीन महीने से वह देखता रहा था कि नाम पूछना हमले की तैयारी है और यदि उस सुबह उसे ना तैयारी की हालत में पाया गया था। यहां डेढ़ हज़ार और चार दिन दूर पहला वार वही करेगा—"तुम्हारा नाम क्या है" उसने खिड़की के भीतर से तीर फेंका। पर उनका उत्तर सहज था—

"मैं मखनलाल, यह चमनलाल।" दूसरा पीछे नहीं रहा, पूछा—

"और तुम्हारा ?" वह इस बार की तैयारी कर चुका था। बोला—

"महेश्वरनाथ। श्रीनगर में रहता था। राजबाग में बंगला था। तीन साल पहले असिस्टेण्ट इंजीनियर हुआ। पिता जी अवतारकृष्ण। माता जी भावना। पत्नी का नाम शोभावती..." वह बोलता ही गया। सब नाम उलट-पुलट न उम्र की दृष्टि से, न ही समय और आधुनिकता की रस्मों के अनुकूल। वह "पंडित जी" के सम्बोधन में जो संकेत पा चुका था उनकी अन्तिम परीक्षा लेना चाहता था।

और उसका अन्दाज़ा सही निकला। किसी नाम या अन्य विवरण पर किसी ने आपत्ति नहीं की। न आश्चर्य। न ही प्रशंसा व्यक्त की। गाड़ी चलने लगी तो चढ़कर अपनी सीट पर जा बैठे।

और वह इन्तज़ार करने लगा कि गाड़ी रुक जाए तो देखें उन को पता किए बगैर उतरना सम्भव होता है कि नहीं। □

कहानी

कलमें नयी नयी.........

रक्त और पाषाण

□ सत्यनाथ रमण

नदी का स्वर गूंज रहा था और वह एक बड़े पत्थर पर बैठा हुआ इस संगीत में खोया हुआ था। नदी के किनारे बसाई गई बस्ती नींद के हिंडोले में गुम हो गई थी। वह अभी-अभी बस्ती से लौट आया था इसलिए वह जानता था कि नदी के बहुत पास आने तक दूर तक फैला हुआ रेत और पत्थरों का साम्राज्य ही केवल दिखता है और किसी भी अनजान व्यक्ति का पत्थरों और रेत के मध्य एक गहरी दरार में बहती हुई नदी को एकाएक सामने पाने पर अचम्भित होना एक साधारण सी बात है। इसीलिए नदी के किनारे एक बड़े पत्थर के पीछे खड़े उस बूढ़े का अचम्भित चेहरा उसके लिए कोई प्रश्न नहीं बन पाया था। बूढ़े के माथे पर अब रक्त जम गया था और उसके माथे पर रक्त के लाल दाग़ अब लालिमा छोड़ कर काले भूरे रंग के हो गये थे।

वह बस्ती से कदापि नहीं लौटता यद्यपि बस्ती का कामकाज ठहर न गया होता, कारोबार रुक न गया होता, संस्थान बन्द न हुए होते, घरों के दरवाज़े भीतर और बाहर के बीच अड़ न गये होते। वह यह सब देख कर पहले उदास हो गया था लेकिन फिर उसने जानना चाहा था कि सब बन्द क्यों है। परन्तु उसे कोई भी बस्ती में मिल नहीं पा रहा था। बड़ी मुश्किल से उसको एक बूढ़ा मिला था। बूढ़े का माथा रक्त से सना हुआ था। बूढ़े ने कहा था, 'बस्ती के लोग सो रहे हैं थके-हारे सो रहे हैं। जब इनकी थकावट दूर हो जायेगी, जब इनमें ऊर्जा आ जायेगी, ये अपने-अपने घरों से निकल कर काम-काज करना शुरू करेंगे उस समय बड़ा शोर-शराबा होगा, नाच-हंगामा होगा, बड़ी दौड़-धूप लगी होगी।" उसने बूढ़े से पूछा था, "बस्ती के लोग क्या काम करते हैं ?' बूढ़े ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा था, "कुछ ऐसा काम करते हैं कि सभी का समय, सभी का यौवन, सभी का जीवन गुज़रता है परन्तु वह

स्वयं अन्त: उस स्थान से आगे वह नहीं पाते जिस स्थान पर उनको किसी ने जन्मा होता है।" उसने बड़े-बड़े मकानों की ओर दृष्टि उठा कर कहा, "क्या इन मकानों की ओर देख कर ऐसा नहीं लगता कि इनमें रहने वाले लोग एक उपलब्धि पाकर सन्तुष्ट होकर सो रहे हैं।" बूढ़े ने शोकाकुल स्वर में कहा, "मैं जानता हूँ इन मकानों का वृत्तान्त मैंने राजगीरी का काम करते-करते ही इस बस्ती में सारी उम्र बितायी। कितने ही आलीशान मकान बनाये। पहले जब मैं मकानों में प्रवेश करने वालों के चेहरों पर खुशी की तरंगें झिलमिलाती हुई देखता था, मैं सोचता था कि यह चेहरे भाग्यवान हैं परन्तु कुछ ही देर बाद गली में चलते-चलते मैं उन आलीशान मकानों से आती हुई चीखें-चिल्लाहटें सुनता था और किसी खिड़की से झांक कर देखता था कि घर के सभी चेहरों से खुशी ही लुप्त हो गई है, मकानों से छाँह ही लुप्त हो गई है। मुझे ऐसा लगता है कि लोग मकान में नहीं तनाव में रहते है।" उसने बूढ़े से गम्भीरता से पूछा था, "क्या तुम अब भी राजगीरी का काम करते हो।" "नहीं, अब मुझ में सामर्थ्य नहीं," बूढ़े ने कहा था। "अब तुम कैसे समय बिताते हो," उसने फिर पूछा था। "अब बैठे-बैठे उन जवानों को देखता रहता हूँ जो अपने आँगनों की दीवारें चढ़ा रहे होते हैं, उन औरतों को देखता हूँ जो कपड़ों को सुखाने के लिए उन्हें धूप में फहरा रहा होती हैं। इन्हें देखते ही मुझे विचार आता है कि मैं कितना बदनसीब हूँ, मैं कुछ नहीं कर पाता, मेरे लिए कुछ करने के लिए कोई स्वयं प्रस्तुत नहीं। फिर जब सब थक कर सो जाते हैं, तब मैं करवटें बदल रहा होता हूँ. मुझे फिर विचार आता है कि सब बेफिक्र सो रहे हैं और मैं जाग कर न उठ पाता हूँ, न लेट कर सो पाता हूँ। फिर धीरे-धीरे खामोशी गहराने लगती है और मुझे आनन्द आने लगता है। मुझे गर्व होने लगता है कि मैं ख़ामोशी सुन पाता हूँ जो इस बस्ती के किसी और व्यक्ति के भाग्य में नहीं है।"

बूढ़ा ख़ामोश हो गया था। यदि वह चाहता तो बूढ़े के साथ ही उसी स्थान पर प्रतीक्षा करता अथवा बस्ती के किसी चौराहे पर बस्ती के लोगों की प्रतीक्षा करता परन्तु मृतप्राय: बस्ती में निष्क्रिय होकर प्रतीक्षा करना उसे अच्छा नहीं लगा था। वह इसी नदी की ओर मुड़कर आ गया था। वह जानता था कि जब बस्ती के लोग सोकर उठेंगे तो बड़ी हलचल मचेगी, शोर की आवाज़ नदी के स्वर को दबा देगी और वह उस समय जल्दी से बस्ती की ओर चला जायेगा।

नदी अपनी एक लय और ताल पर बहती जा रही थी। जो जल नदी में नदी के लय-ताल पर बह रहा था उस को समुद्र हो जाना था। वह भी इसी लय-ताल पर बहता जा रहा था। नदी के जल में से छोटी-छोटी मछलियाँ तैरती हुई उसे साफ नज़र आ रही थीं। मछलियों का एक झुंड एक साथ एक दिशा में जा रहा था। अकस्मात् ही मछलियाँ विभिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न गतियों से तैरने लगी थीं। मछलियाँ क्षणांश में कौन सी दिशा और कैसी गति पकड़ लेंगी, अनुमान लगाना कठिन था। मछलियाँ एक ही घेरे में दायें बायें, आगे-पीछे तैर रही थीं। कुछ जल-कण जो उन छोटी मछलियों के पेट में थे उन्हीं के वृत्ताकार में सीमित होकर रह गये थे जबकि नदी बहती जा रही थी। उसे विचार आया कि कहीं उसकी दृष्टि भी मछलियों की भ्रामक चाल में फँस न जाये। उसने मछलियों से दृष्टि उठाकर सामने एक बड़े पाषाण पर टिकाई। पाषाण अपनी जगह पर टिका हुआ था, अपने रंग-रूप से ही सख्त नजर आ रहा था। पाषाण के अंशमात्र भी हिलने की सम्भावना नहीं थी।

उसको दूर से आती हुई छाया नज़र आई। वह जानता था कि अवश्य वही बूढ़ा होगा। उसे विचार आया कि वह स्वयं भी कभी एक छाया रहा होगा, एक छाया जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। उसको स्मरण हो आया कि वह स्वयं यहाँ तक उसके कारण आया जिसको वह कमलिनी कहा करता था। जो कहा करती थी, "मुझे कमलिनी क्यों कहते हो? मुझ में कुछ ऐसा नहीं," जिसके वह प्रतिरोध में कह बैठता, "क्यों नहीं है! तुम सुन्दर हो, तुम में सुन्दरता है।"

तब दूर क्षितिज में सूर्य चढ़ता जा रहा था, ताप बढ़ता जा रहा था। वह जब एक नयी ही अग्नि में तपता जा रहा था तब उससे कहलाने वाली कमलिनी ने उसे कहा था, "वह सुन्दरता नहीं होती जो अनन्त काल तक जीवित न रह सके।" यह सुनकर उसके चेहरे पर अविश्वास की मुस्कराहट सी आ गई थी। यह देखकर उसने फिर कहा था, "मुझे मृण्मयी कहो, मैं मृण्मयी हूँ, मृण्मयी। मुझे कमलिनी मत कहो। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मैं भ्रामक हूँ, भ्रामक." कहते-कहते उसका स्वर बदल गया था। उसका यह नया स्वर सुनकर वह कुछ काँप सा गया था। उसके पाँव के नीचे से एक छोटा सा पत्थर खिसक गया था और वह असन्तुलित हो गया था। फिर बड़ी देर तक एक स्तब्धता सी छा गई थी। फिर उसने जो स्वयं को मृण्मयी घोषित कर चुकी थी, शान्त लहजे में पूछा था, "तुम मेरी ओर आकर्षित हुए हो न।" वह केवल सर हिलाकर 'हाँ' कह पाया था। "मुझ में क्या है जो तुम्हें मेरी ओर आकर्षित करता है, "उसने उसी लहजे में पूछा था। उत्तर में उसने उस मृण्मयी के मुख मण्डल पर दृष्टि डाली थी और उसके मुंह से स्वतः निकला था, "तुम्हारी यह झील सी आँखें" "हाँ, क्योंकि, तुम्हारे मन में यह बात बैठ गई है कि मेरी यह आंखें तुम्हें निहारती हैं, इनमें तुम्हारी छवि है," उस मृण्मयी के स्वर में कहीं कोई रोमांच नहीं था।

कुछ देर के बाद उस मृण्मयी के चेहरे के रंग कुछ बदल गये थे, तब उसके स्वर में आक्रोश भर गया था जब उसने कहा था. "तुम अपने हाथ आगे करो, मैं तुम्हें यह आँखें भेंट दे देती हूं।" वह इन शब्दों का पूरा अर्थ समझते ही अन्तर तक दहल गया था। अपने हाथों को पीछे करते हुए उसके मुंह से चीख निकली थी "नहीं, तुम यह क्या कह रही हो?" उसने फिर उसी शान्त लहजे में कहा था, "क्यों तुम्हें यकीन नहीं आता? तुम हाथ आगे करो, तुम्हें यकीन आ जायेगा।" उस क्षण उसे लगा था कि उसके हाथ भी उसकी लाचारी हैं। "नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता. मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी यह भेंट," यह कहते-कहते वह हड़बड़ाकर उसके पाँवों पर लुढ़क गया था। फिर उसी लहजे में कहा था, "जो तुम्हें आकर्षित करती हैं, जिनसे तुम्हें प्यार है, क्या तुम उनको रख भी नहीं सकते, उनको ले भी नहीं सकते।" "नहीं, नहीं, तुम यह सब क्या कह रही हो," वह घबरा गया था। वह जानता था कि वह जो कहती है उसके प्रति अत्यधिक गम्भीर होती है। फिर उसने कहा था, "अच्छा नहीं सही. परन्तु तुम केवल इतनी कल्पना कर लो कि यदि मेरी आँखें तुम्हारी हथेलियों पर हों तो क्या यह तुम्हें तब आकर्षित करेंगी, तुम इन्हें प्यार दे सकोगे?" वह तब पसीने से तर हो चुका था। अपना संतुलन ही नहीं बना पा रहा था और अपनी सुध-बुध खो बैठा था। "मैं कुछ नहीं जानता अपने बारे में, मैं कुछ नहीं जानता। मुझे नहीं मालूम मुझे क्या आकर्षित करता है और क्यों करता है। मैं क्या चाहता हूँ?" उस समय वह अजीब सी स्थिति में था। कुछ समय बाद उसने पूछा था, "तुम जानती हो मेरे बारे में? मैं क्या हूँ?

मैं कौन हूँ ? मुझे बताओ मेरे बारे में," उसने उसी लहजे में नदी के निकट जाकर कहा था, "मैं केवल यह जानती हूँ कि तुम्हारे हृदय की गति, तुम्हारी चेतना, तुम्हारा मन यह रोशनी सब मिल कर मेरी आँखों के पटल पर सुंदरता का भ्रम पैदा करते हैं जो स्पर्श से टूट सकता है ।" उस समय तक उसने कल्पना तक भी नहीं की थी कि वहाँ उन पत्थरों के मध्य कोई नदी बह रही होगी । वह हैरान हो गया था । उसने छटपटाते हुए उस मृणमयी से पूछा था, "मैं अब क्या करूँ ?" वह अपने ही बहाव में बोल पडी थी, "क्या यह नदी सुन्दर नहीं, क्या इन पत्थरों में सुन्दरता नहीं ? तुम उन पर्वतों के ऊँचे शिखरों की ओर आकर्षित क्यों नहीं होते ? तुम नहीं जानते । सुनो, तुम्हें सुन्दर कहकर जो दिखाया गया जो थमाया गया जो लादा गया तुमने उसी को सुन्दर मान लिया । तुमने स्वयं सुन्दरता की तलाश नहीं की । तुम्हें स्वयं सुन्दरता की तलाश करनी होगी । ऐसी सुन्दरता जिसमें अनुपात या मिश्रण का जादू न हो जो किसी पर आधारित न हो जो मेरी आँखों की भान्ति अपने ही स्थान पर नहीं अपितु तुम्हारी हथेलियों पर भी सुन्दर लगे ।" वह यह शब्द तब भी सुनता जा रहा था जब वह पहाड़ पर चढ़ता जा रहा था । उसने सुना था नदी पहाड़ के शिखर पर एक गुफा से निकलती है । वह आगे बढ़ता जा रहा था, ऊपर चढ़ता जा रहा था ।

फिर वह उस गुफा में पहुंच गया जिस में नीचे से जल की एक धारा बह रही थी जो बहुत नीचे जाकर नदी का रूप धारण कर लेती थी । गुफा में पहलेउसे घुप्प अन्धेरा ही दिखाई दिया फिर वह गिरते-उठते गुफा के भीतर गया था । भीतर एक अग्नि दमक रही थी । गुफा में उसे बहुत सी शिलाऐं नजर आईं थीं । उनमें उसने घर की दहलीज की शिला देखी, वह पत्थर भी देखे जो उसके घर की नींव में डलवाये गये थे, वह पाषाण देखे जिनमें से वह दीवारों जैसे पत्थर गढ़ता था, वह दीवारें जो वह अपनी सुरक्षा और लाभ के लिए खड़ी करता था । उसने वह शिलाएं देखीं जिसको उसने अपने घर में घर का एक हिस्सा बना रखा था, उस घर में जिसमें वह रहता था । उसे वह सब पत्थर टेढ़े मेढ़े लगे थे । वह सब जिनको वह सुन्दर मान कर गले से चिपकाये हुए जिये जा रहा था, उसको कुरूप लगे थे । "तुम्हें सुन्दरता की तलाश करनी होगी ? क्या इन पत्थरों में सुन्दरता नहीं..." ये शब्द उसके कानों में फिर गूंजने लगे फिर उसने एक पाषाण को, जो उसे कुरूप लगा था, गढ़ना आरम्भ किया । वह वर्षों गढ़ता रहा । वह पत्थरों को गढ़ता रहा । गुफा के भीतर केवल उसीके पत्थर गढ़नेकी ध्वनि गूंजती थी । उसके काम को जब उसका सोना चाहिये होता था, वह सोता था, जब जागना चाहिये होता था जागता था । एक लम्बी अवधि के बाद उसने पाषाण से एक मूर्ति गढ़ ली । फिर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वह पत्थरों में नहीं अपितु मूर्तियों में रहने लगा जो सुन्दरता की मूर्त्तता थीं । तब वह बस्ती की ओर आ गया । वह चाहता था कि वह उस मृणमयी की भान्ति बस्ती के लोगों को समझा दें कि उनके सग्रहालयों में पड़ी हुई वस्तुएं सुन्दर नहीं उनके विचार, उनके भाव सुन्दर नहीं और न वे स्वयं सुन्दर हैं और न सुन्दरता की तलाश कर रहे हैं । उसमें उस समय तक बड़ा उत्साह था जब तक वह बस्ती में आ गया था और उस बूढ़े से मिला । उसने सबसे पहले बूढ़े से यह पूछा था कि उसके माथे पर रक्त कैसा है ? उस बूढ़े ने अपने माथे पर एक नुकीले पत्थर को मारते हुए कहा था, "इस पत्थर की कृपा से ।" उसे आश्चर्य हुआ था । बहुत पूछने पर बूढ़े ने उसे कहा था, ": मैं चाहता हूं इस बस्ती का शोर, नाच-हंगामा मुझे अपनी ओर न खींचे, मुझे न ललचाये क्योंकि मैं जानता हूं कि यह सब उम्र की घड़ी-घड़ी ग्रस लेता है और भूखा, प्यासा,

असहाय अपने लिये अयोग्य बना कर मृत्यु की राह पर छोड़ देता है। लेकिन जब-जब यह बस्ती उठती है, अपनी जवानी में आती है तो मेरे रक्त में कुछ उबलने लगता है, मैं भी नाचना, कूदना, चिल्लाना चाहता हूं। मुझे बहुत बार लगा है कि यह सब नाच-कूद, शोर-हंगामा मेरे रक्त में चला गया है मेरा यह रक्त दूषित हो गया है, इसे निकलना ही चाहिये।''

बस्ती से नदी की ओर आते वह सोच रहा था कि उसका रक्त भी किसी समय दूषित रहा होगा परन्तु गुफा तक पहुंचते पहुंचते, फिर पाषाण गढ़ते-गढ़ते शुद्ध होता गया होगा। वह नहीं जानता था कि क्या बस्ती के लोगों का रक्त शुद्ध होगा भी कि नहीं परन्तु उस का उत्साह बढ़ाने के लिये यह काफी था कि वह बूढ़ा चुपचाप बिना हिले-डुले नदी के किनारे उसको देख रहा था। और वह स्वयं नदी के संगीत में खोया भी था और बस्ती के लोगों के उठने की प्रतीक्षा भी कर रहा था। □

इस बात को सदा याद रखें कि किसी भाषा
की क्षमता उसके प्रयोग पर ही
निर्भर करती है।

—हरिवंशराय बच्चन

कहानी

तपते दिनों में

☐ आशा अरोड़ा

वे हल्की-हल्की सर्दियों के दिन थे। पल्लव और अंकुर पाले के चोले को उतार फेंकने और गुल्मों के स्वागत में मग्न थे। बसन्त के पहले के दिन, गुनगुनाती धूप में मुंडेरों से झांकना, अलसाए से बैठे हुए सूरज को तपते हुए देखना और उन सूइयों को महसूस करना जो हज़ारों बाणों की तरह सूरज की धूप के साथ-साथ शरीर में घुस कर उसे छलनी कर देती हैं। पर उन धूप के बाणों को शरीर से निकालने का मन नहीं होता। ऐसे समय में वह सीढ़ियों को नाप कर कब ऊपर चढ़ आए थे, नहीं जानता। मुंडेरों के मोड़ पर बैठने की जगह के पास स्थिर-सी वह खड़ी थी। पतंगों के पेंच के साथ-साथ नज़र टापती हुई वहां रुक गई थी। एक पतंग कट कर झुकी और मन्दिर के कलशों के उस पार गायब हो गई। वह चुप सी पांव की ओर देखती खड़ी रही थी। मुझे खूब याद है वे बसन्त के गुनगुने दिन थे अभी गुलाब के गुल्म पूरी तरह से उठे नहीं थे। अंकुरित नव पल्लव बरबस स्पर्श के लिए आतुर कर जाते। कहीं बिखर न जाएं—उन्हें छूने का साहस नहीं होता—उनकी कल्पित छुअन सारे शरीर में गरिमा भर देती—ठण्डी दुपहरी में वह गरिमा अच्छी लगती।

उसने हाथ में पुस्तक और नोटबुक उठा रखी थी। अपनी ओर देखते महसूस कर वह थोड़ा हिली थी फिर पंखुड़ियां अलग होकर कांपने लगी थीं 'आंटी कहती थी आप कुछेक प्रश्न करवा देंगे।' अधखिले गुल्मों को छूती हुई हवा का झोंका अपने साथ सौरभ के कणों को बहाए चला गया था—केवल गन्ध को पकड़ गया था जो स्पर्श से कहीं गहरी अनुभूति-पूर्ण थी।

'ऋतु' बहुत प्यारा नाम आज भी होंठों से अलग नहीं हो पाता। वहीं मुंडेर पर बैठकर प्रश्नों को देखा भर था. कहीं हल होने में देर न कर दें। किताब पकड़ाने और नोटबुक खोलने के क्षणों में कितनी ऊष्मा गुल्मों की सतह को स्पर्श करती मेरे अन्तर में पैठ गई थी, नहीं जानता। मेरे समझने और उसे हल करने की नीयत को भूल कर वह किसी अन्य प्रश्न को सुलझाने में लग गया था। यह एक यात्रा का आरम्भ था जिसके 'मील-पत्थर' को देख कर कुल सफर का अनुमान करने की फुरसत नहीं थी। यह अनाम यात्रा कब किस मोड़ पर समाप्त हो जाएगी, नहीं सोचा था। सफर क्या था—गुलाबी बाराहदरियों, रंग-बिरंगी तितलियों, फानूसों के घेरों से निकले अनेक रंगों से बुने स्वप्नों का मखमली रास्ता था जिसके हर मोड़ पर इत्र की खुशबू बिखरी हुई थी—वे वसंत के दिन थे।

'ऋतु, तुम बोलती क्यों नहीं? क्या मुझ से बात करना अखरता है—या डर लगता है—ऐसे में तो हमारा बैठना बड़ा 'बोरिंग' हो जाएगा!'

वह केवल होंठों को हिलाकर सर हिला देती है। उसका हाथ कांप कर नोटबुक पर पड़े मेरे हाथ की उंगलियों के पास आकर स्थिर हो जाता। जैसे यह कोई सीमित रेखा होती जिसे पार कर जाने की प्रतीक्षा में वह उस ओर अधीरता से बैठी रहती। प्रश्नों के उत्तर भर लिखने, उन्हें समझने और शब्दों को पकड़ने तथा उच्चारित करने के सिवा वह कभी-कभार बोला हो, मुझे याद नहीं। मुझे यह खूब याद है कि वसन्त का एक दिन—खूब खुला दिन था, धूप गर्म कपड़े की तह सी उतरती हुई बिल्कुल समाप्त हो आई थी कि सन्ध्या को अचानक बादल घिर आए थे। रिमझिम फुहारें पड़ने लगीं। देखते ही देखते वातावरण को चीर कर ठण्ड उभर आई और ठिठुरन शरीर को कंपाने लगी। ऋतु सम्भलते-सम्भलते भी ठिठुरने लगी थी। शाल का छोटा-सा टुकड़ा उसे गर्मी नहीं दे पा रहा था। लिखते-लिखते उसके हाथ कड़कड़ाने लगे थे। उसने पेन एक ओर रख दिया और हाथों को शाल में छुपा लिया। अचानक उसकी दृष्टि मेरी ओर उठ आई थी। उसमें क्या था? शायद कार्य जल्दी करने की मौन याचना या अधिक सर्दी का मौन आलाप 'हाथ ज्यादा ठिठुर रहे हैं?' उसके कान सुर्ख हो आए थे। जल्दी से दायां हाथ निकाल कर उसने पेन पकड़ लिखने की मुद्रा में उसे नोटबुक पर टिका दिया था। हाथ नीलाहट लिये था। कब हाथ जेब से निकल कर उसके हाथ पर टिक गया था, नहीं मालूम। उसके हाथ से पेन छूट कर नोटबुक पर से होते हुए नीचे आ गिरा था जिसे उठाने का प्रयास उसने नहीं किया था। बर्फ से ठण्डे हाथ में पता नहीं क्या आ गया था? पल भर कांप कर वह मेरे हाथ में स्थिर हो आया था। उसकी आंखों में से एक चिंगारी कौंध कर कब अन्तस को मथ गई पता ही हीं चला। पर इस दौरान उसका दूसरा हाथ भी शाल से निकल कर सहारे के लिए मेज पर आ टिका था जिसे जबरन मेरे दूसरे हाथ ने कस लिया था। थोड़ी छटपटाहट के बाद हाथों के साथ-साथ ही उसका सिर झुक कर मेरे कन्धों पर टिक गया था—मौन समर्पण। सारा संसार ठहर आया था। वह ठण्डी पड़कर कहीं सिकुड़ गई थी। एक-दूसरे की गरमी को अनेक घड़ियों तक महसूसते बैठे रहे थे जिसकी छुअन को ऋतु के चले जाने के बाद भी कई रोज तक भुला नहीं सका था वह। वे भी वसंत के बिन थे—मीठी अनुभूतियों के दिन, खुशबुओं और खुशनुमा वातावरण के दिन—लेकिन वे दिन अब मरहम कम लगाते हैं, कोंचते ज्यादा हैं। कहीं अन्तर तक इनकी पैठ है। इन्हीं दिनों में पुराने जख्म ताजा हो जाते हैं। देखने को कोई अनदेखा

कर दें पर यादें तो बंद आंखों में किरकिरी जगाती रहती है जिनके धूपछांही रंगों को खुली और बन्द आंखों के समान रूप से देखा जा सकता है। ऋतु चली गई थी। इस अन्तराल में कई वासन्ती दिन जरीबों से लांघ कर निकल आए थे। ये बीच के दिन मुझे याद नहीं, पर वे पहले के दौड़ते दिन जिन्हें गिन-चुन कर मानस-पटल पर सजा लिया था—अब कोंचते हैं।

एक दिन अचानक दीदी नीचे चली आई थी, 'ऋतु आई है, मिलोगे नहीं ? बेचारी बड़ी दुःखी है।' दीदी काफी देर चुप-सी खड़ी मेरी ओर देखती रही थी ! शायद मेरे चेहरे से पढ़ने वाली रेखाओं को पढ़ रही थी। पर मैं एकदम स्तब्ध सा बैठा रहा था जैसे वज्राघात हुआ हो। बहुत पहले ही दीदी से पूछना चाहा था, ऋतु कहां होती है ? क्या करती है ? अब कभी यहां आएगी भी कि नहीं ? लेकिन साहस नहीं कर पाया। सोफे पर चलती हुई चींटियों ने अपने मुंह में कोई सफेद भार उठा रखा था। एक चींटी भार से बोझिल थी, शायद सम्भल नहीं पाई। नीचे सरकते-सरकते और सम्भलते-सम्भलते भी दो हाथ नीचे चली आई। उसके साथ चलने वाली चींटी ने पलभर मुड़ कर नीचे की ओर देखा तो चींटियों की कतार उसे धकियाते हुई आगे बढ़ती रही। वह भी उसके साथ दूर तक घिसटता चली गयी, पर फिर रुक कर कतार से अलग होकर नीचे देखने लगी जैसे अपनी साथिन का इन्तज़ार कर रही हो। सीढ़ियां चढ़ते हुए दीदी के पांव की थपक से चेता था वह। आखिर ऋतु के साथ इन दिनों से ऐसा क्या घटा है ? अभी पिछले वर्ष ही तो बड़ी धूमधाम से उसकी शादी हुई थी। वे दिन कितनी ऊष्मा देने वाले दिन थे। बारात की रिसेप्शन के दिन लगा था, अन्तर में कुछ सरक गया है—धुआं-धुआं सा हुआ मन कहीं ठहर नहीं पाया था—एक झलक भर पाने के लिए आतुर क्षण की प्रतीक्षा सारे वर्ष कुतरती रही थी।

ऋतु के नाममात्र से शरीर में सनसनाहट दौड़ गई थी 'अवश्य मिलूंगा'। उसे स्वयं आना चाहिए था। मन में उसे देखने की ललक थी कि कैसी लगती है। शादी के बाद के पचड़ों में बीते हुए दिन सरक जाते हैं—अक्सर लड़कियां उन दिनों को नहीं पकड़ पातीं। क्या ऋतु सब कुछ भूल गई होगी ? उसे दुबारा स्मरण करवा पाऊंगा ? मुझे लगा कि मेरा जिस्म कांप रहा है। शायद उत्तेजना से या मिलने की उत्कण्ठा से। ऋतु दुःखी क्यों हैं ? ऐसा कौन-सा दुःख उसे साल रहा है। अनेक अहापोह मन में कसकने लगे। उसे देखने और सब जानने को मन अति आकुल था।

संध्या समय दीदी ने ऋतु को स्वयं ही बुला भेजा। वह निर्जीव-सी घिसटती चली आई। सीढ़ियां चढ़ते उसके पांव थिरक गए थे। पल भर मानो खड़ी निश्चय कर रही हो कि ऊपर जाए या नीचे ही रहे। उसे उस द्वन्द्व में से निकालने का साहस एक क्षण वह नहीं कर पाया, पर दूसरे ही क्षण बाहर आकर उसे अन्दर लिवा लाया था। वह चुप-सी सोफे पर ठिठक हो गयी है—नीचे पांव की ओर देखता हुआ उसका चेहरा रक्त से निचुड़ा लगता था। गुल्मों में आने वाली बहार से पहले ही हेमन्त का अनुभव—हरी पंखुड़ियों पर पाले की मार सहन नहीं कर पाते—यौवन में आने से पहले ही झुक कर बिखर जाते हैं। अन्तर में कुछ चटख गया। कुछ पूछने का साहस न जुटा पा कसमसाता रहा वह। लगातार अपनी ओर देखने पाकर वह थोड़ा विचलित होकर पहलू बदलती है। उन दोनों के बीच मौन पारदर्शक दीवार बन जाती है। मौन की भी अपनी भाषा होती है—शब्दों से कई गुणा-सार्थक।

जब मुंह बंद हो जाता हैं तो आंखें बोलने लगती हैं और मन मर्मस्पर्शी भेदिया बन जाता है। कितना समय यूं ही निकल जाता है। कुछ भी कहने का साहस जुटा नहीं पाता वह। ''ऋतु ! क्या कुछ भी नहीं कहोगी ? ऐसी कौन सी बात है जो तुम्हें मथ रही है ?'' जैसे मेरा अन्तर पिघल गया हो। उसके हाथ दुपट्टे से खेलने लगे थे. पर उनमें से उठने वाली बेचैनी उसे स्पष्ट नज़र आ रही थी। वह थोड़ा कसमसायी। फिर उसकी आंखों में से जमा हुआ लावा पिघल कर बहने लगा। सहानुभूति की उष्णता जमे हुए आंसुओं को ताप देती है। वह उसके बहुत पास सरक आया। उसे लगता है कि यह जमा हुआ लावा उसी के अन्दर कहीं बह रहा है। अनायास ही उसके हाथों को अपने हाथों में पकड़ लेता हूं जो कांप कर स्थिर हो जाते हैं और उसका सर मेरे कन्धे पर ढुलक कर सुबकने लगता है रुका हुआ बांध टूट जाता है। वह काफी देर सुबकती-सुबकती अपने पास स्थिर हो जाती है। वह रोक नहीं पाता। न ही यह समझ पाता हूं कि उसे सांत्वना दे या स्वयं पाये।

ये वसन्त के बाद के तपे हुए झुलसा देने वाले दिन हैं, लेकिन उसे लगता है कि सर्दी बढ़ गई है क्योंकि उसका शरीर सिहर रहा है। □

जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं
आपका कोई राष्ट्र भी नहीं।

—मुंशी प्रेमचन्द

कहानी

चुनी गई समस्या

□ हरदर्शन सहगल

—लीजिए बैड टी। किरण कह रही थी।

छोटे बाबू अलसाए से उठ बैठे। किरण भी अपना प्याला लेकर उन से सट कर बैठ गई। किरण कुछ कह रही थी शायद। पर वे अपने ख्यालों में खोते जा रहे थे।

छोटे बाबू के नाम से प्रसिद्ध थे. प्रवीण श्रीवास्तव। रेलवे स्टेशन से रेंगता हुआ यह नाम मुहल्ले तक आ पहुंचा था और होते-होते प्रवीण या श्रीवास्तव जैसी संज्ञाएं खो सी गई थीं। रह गए थे. मात्र छोटे बाबू।

अपने काम से काम रखने वाले वक्त जरूरत दूसरों के काम आने वाले. सरल स्वभाव के छोटे बाबू की प्रायः हर जगह एक विशिष्ट छवि बन गई थी।

स्टेशन पर प्रसिद्ध था कि प्रवीण श्रीवास्तव की ड्यूटी में गाड़ियां चलती ही नहीं, जरूरत पड़ने पर दौड़ती भी हैं। ठीक समय पर, नियंत्रित, अनुशासित।

ठीक गाड़ियों की तरह उनकी गृहस्थी की गाड़ी भी बड़ी खूबसूरती से चल रही थी। किन्तु तभी......

—आप सुन नहीं रहे. मैं क्या पूछ रही हूं।

किरण के ज़ोर से बोलने पर. छोटे बाबू ने कहा—हां, हां कहो। किरण ज़ोर से हंसने लगी—क्या इस उम्र में मुझ से भी स्टेशन मास्टरी कराओगे। एक तो बारह की बजाए जनाब पौने एक बजे घर आए। फिर मुझे भाषण सुनाने लगे। सारी गाड़ियों की पंक्चुअलिटी कैसे मेनटेन की। न तो कोई पेपर लाइन क्लीयर देना पड़ा। और न कोई इंजिन पाइलेट

होने दिया। सिगनलज़ लिवर्ज़ ब्लॉक इन्स्ट्रूमेंट किसी ने आप को धोखा नहीं दिया। हाय धोखा दे गया तो बस वह स्कूटर। बीच-बीच में मोहिनी भी आती रही थी। क्यों ?

—क्या सचमुच ! छोटे बाबू हंसने का प्रयत्न करने लगे।

—इस तरह कब तक सेहत बचा पाएंगे आप।

—ऐसा कुछ नहीं होगा। बस ज़रा स्कूटर का मामला सुलझ जाए : तब मन एकदम से शांत हो जाएगा. पहले की तरह। अब सोचता हूं क्यों थोड़े से प्रलोभन में आकर. यह पंगा ले बैठा। अपनी तो बस एक ही सुख शांति की राह थी; स्टेशन और गाड़ियां।

—सो तो है ही. किरण के स्वर में शिथिलता आ गई. गलती तो मुझ से भी हुई जो उस गुंडे कबाड़ी से आप का परिचय करा बैठी।

—इसमें. तुम्हारा या और क़िसी का क्या दोष। जो काम उलझना होता है. उलझता ही है। फिर समय आने पर सुलझता भी है।

तभी दरवाज़े पर ज़ोर से केन रखने की आवाज़ आई।

—दूध वाला ! कहते हुए किरण बाहर को लपकी।

—सुनो, अभी आलस आ रहा है। थोड़ा और सोऊंगा। जगाना मत। आज रेस्ट है।

फिर से रात वाली स्थिति हो चली. छोटे बाबू की। रात एक के करीब सोए थे। पहले तो कुछ नींद आई थी। फिर जैसे हड़बड़ी. उकताहट का आलम शुरू हो गया था; आखिर यह सब क्या भोंडापन है. दूर कहीं से रात्रि जागरण पाठ सुनाई दे रहा था। फिर हां. ठीक से याद नहीं. किरण से क्या-क्या बातें हुई थीं। फिर नींद का एक झोंका। फिर जाग।

सारा स्टाफ जब स्कूटर-अडवांस के फार्म भर रहा था, तो सब के कहने से उन्होंने भी फार्म भर दिया था।

अडवांस का पैसा इतना कम मिला कि नया तो क्या, पुराना भी अपनी तरफ से और पैसे मिलने पर ही आया। साथियों ने कहा, रसीद जमा मत कराना। कोई भी जमा नहीं कराता। तुमने अगर जमा करा दी तो हम से भी पूछेंगे। हम ने तो लिया ही नहीं। कहां से जमा कराएंगे।

कुछ समय तक तो छोटे बाबू खुशी-खुशी स्कूटर चलाते फिरे। फिर एक दो टक्करें हो गईं......आखिर यह सब क्या भोंडापन है। उन्होंने करवट बदली। गाड़ी चलाना एक बात है। स्कूटर चलाना, रखना-पालना, दूसरी बात है। खर्चा होने लगा। फिर आभास हुआ, यह पुराना माल पैट्रोल भी खूब पीता है। यह सब पैसा तो बच्चों के भविष्य के लिए जमा किया जाना चाहिए। सिर्फ शान के लिए इसे लटकाये रखना-पालना कोई मायने नहीं रखता। स्टेशन और मिलने-जुलने वालों के घर, कौन से दूर हैं। अपनी तो साइकिल ही भली। किरण से बात की उसने कहा—ठीक कहते हैं। फिर कभी नया ले लेना।

पहले वाले महल्ले की कोई औरत बीच में पड़ी। उसने एक आदमी को आधे से भी कम पैसों पर किस्तों में स्कूटर दिलवा दिया। रसीद भी उसे दे दी।

जिस कर्मचारी को स्कूटर अडवांस नहीं मिला था, उसकी शिकायत पर प्रशासन ने एक्शन ले लिया। न स्कूटर। न रसीद। डिपार्टमेंटल इंक्वायरी चल रही है। इतनी लंबी सर्विस में पहली बार चार्जशीट का धब्बा। ...क्या भोंडापन है यह। बाकी सब तो मस्त घूम रहे हैं। सो जा।...

ऐसी ही सोचें, रात को उनके अस्तित्व के आर पार होती रही थी। फिर पिछली शाम का नज़ारा, तब वे शाम को बाज़ार से सामान लेकर लौट रहे थे।

—अंकल-अंकल मम्मी बुलाती हैं। एक बच्चे ने सिपाही की तरह हथेली दिखा कर उनकी साईकल रुकवा दी थी। साइकिल पर, सब्ज़ी, दाल मसाले चीनी के थैले झूल रहे थे। वे बच्चे को पहचानने की कोशिश करने लगे। तभी उन्हें बाएं किनारे के बड़े मकान में मोहिनी खड़ी दिखाई दीं। उनकी पत्नी किरण की पक्की सहेली, मोहिनी।

—हम ने यह नया मकान बनवा लिया है। एक बार दीदी मिली थीं। बहुत सारी बातें हुई थी। बताया नहीं दीदी ने।

—हां-हां बताया तो था कि, आज कल आप यहीं आर० टी० ओ० में काम कर रही हैं। बधाई।

—शुक्र है हमारे बारे में कुछ तो याद रहा। चलिये अन्दर। मोहिनी हंसने लगी।

—फिर साथ ही आएंगे। अभी बहुत सामान है।

—हम ले नहीं लेंगे; आप का सामान। मैंने तो आप के स्कूटर के केस का भी पता लगाया है।

यह सुनते ही वे, सामान सम्भालते अन्दर चले गये थे।

—बेचना ही था तो खरीदा ही क्यों था ? मोहिनी ने बात शुरू की।

—अपने बस का नहीं।

—आपके डिपार्टमेंट में, सुना है, बहुत पैसा है।

—हर जगह ऐसा नहीं होता। फिर अपना-अपना नेचर है। एक गलास पानी। उनका गला सूख गया था।

मोहिनी पानी लेने गई। चाय का पानी भी चढ़ा आई।

—आप रोड़ टैक्स भी जमा नहीं करा रहे ?

—मेरा तो हर महीने में से पैसा कट रहा है। आप की दीदी ने जिसे किस्तों पर स्कूटर दिलवाया था, उसने रुपये देने बंद कर दिए हैं। स्कूटर भी उसी के पास है।

—है तो अभी आप ही के नाम। पता है, मोटर एक्ट में क्या कुछ हो सकता है। एक्सीडेंट हो जाये तो भी आप ही फंसेंगे।...ठहरिए यहीं रहता है वह। मुन्ने ज़रा रामू अंकल को बुला लाना।

थोड़ी देर में राम बाबू आया था। साथ में कोई कुर्ता पहने तहमत बांधे मूंछों वाला मोटा व्यक्ति भी था।

पहले राम बाबू ही बोला—स्टेशन मास्टर साहब! तो आप बैठे हैं! हर एक की इज्ज़त होती है। एक तो खटारा स्कूटर हमारे मत्थे मढ़ दिया; दूसरा रौब डलवाना चाहते हैं। मैंने उस दिन भी यही कहा था, जब पैसे होंगे, दे दूंगा। कहीं भागे तो नहीं जा रहे।

—मैंने ऐसा कब कहा। मैडम कह रही है। पैनलटी बढ़ती जा रही है।

—आह! अब की मूछों वाला युवक बोला, पैनलटी यही देगा। आप घबराते क्यों हैं। मैडम आप इन्हें समझाइये हम कोई ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं।

—चाय पीजिये। सब के सामने चाय आ गई।

—बोल भई राम बाबू! कब दे देगा स्टेशन मास्टर साहब के पैसे?

जवाब न मिलने पर फिर वही बोला—शरीफ आदमी शर्म से दबा पड़ा है। आजकल ज़रा शराबियों छुरेबाज़ों के चक्कर में है। इसलिये गर्दन और नीचे हो गई है।...खं खां... वह ज़रा खांसा आप लोग मुझ पर विश्वास रखिए। अगर यह नहीं देगा तो अगले महीने में एरियर मिलने पर पूरी रकम विद आल टैक्सेज़ एण्ड पैनलटी मैडम के घर जमा करा दूंगा। अब तो खुश!

—ठीक है। हो जाना चाहिये। उन्होंने खड़े होकर दोनों से हाथ मिलाया और विदाई ली।

फिर मोहिनी ने उन्हें समझाया—जीजा जी। उतावलेपन से काम बिगड़ते हैं। जहां इतना लेना है वहां, टैक्स पैनलटी की रकम भी नोट करते जाइए। बस आर० टी० ओ० का हिसाब बकाया नहीं रहना चाहिए।

—यस मैडम। वे हंसने लगे थे, सारी उम्र आदमी कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। बस ऐसी नाटकबाज़ी हमारे बस की नहीं।

—विश्वास तो करना ही पड़ता है जीजा जी। ज़रा और देखती हूं। नहीं तो नोटिस सर्व करूंगी।

रास्ते में वे सोचते रहे थे। कोई पक्की लिखा-पढ़ी तो हुई नहीं थी नोटिस किस को मिलेगा। उसको या मुझ को।...

आखिर यह सब क्या भोंडापन है। आज तो रेस्ट है। सो जा। टार्च जलाई। पानी पिया। अभी तो साढ़े तीन ही बजे हैं। क्यों इतनी जल्दी जाग गए। शायद बाहर ज़ोर ज़ोर से उल्टी सीधी हवा चल रही है। सांय-सांय। ज़रूर कहीं कच्चे पत्तों के टूटने का क्रन्दन-स्वर आ रहा हैं। यह सब कितना डरावना है। इसी से शायद बार-बार नींद टूट जाती है। इन्क्वायरी की अगली तारीख......हूं।

—किरण! उन्होंने अपनी आवाज़ रोक दी। इस बेचारी को क्यों परेशान किया जाए। अन्धेरे में वे अपनी ही फीकी-सी मुस्कान से खेलने लगे। चाहते हुए भी किरण को नहीं उठाया था। और नींद के चन्द और झोंकों में खोते रहे थे।

सवेरे किरण ने ही उन्हें उठाया था। लीजिए बैड टी......। □

भाषांतर

पंजाबी कहानी

एक और एक दो, दो और दो चार

□ डॉ० दिलीप कौर टिवाणा
अनु० शान्ता ग्रोवर

कमरे में धीरे-धीरे अन्धेरा उतर आया।

अन्धेरा घुल-घुलकर घना हो गया।

जीत ने उठकर बत्ती नहीं जलायी।

पर्ल पालिशवाली बुद्ध की मूर्ति अन्धेरे में भी चमक रही है।

जीत ने हाथ बढ़ाकर रेडियो लगा दिया।

"लता गा रही है।..."

"नहीं. नहीं. ये सब बकवास है". जीत ने खीझ कर कहा और रेडियो बंद कर दिया। खिड़की से दूर बसे शहर की बत्तियां दिखाई दे रही थीं।

अन्धेरे में रास्ता ढूंढता एक जुगनू कमरे में आ गया। वह मज़े से कमरे में घूमने लगा।

जीत ने उठकर बत्ती जला दी।

पैड और पेन उठाया और खत लिखना शुरू किया, "तुम समझते हो...नहीं... नहीं...नहीं।"

कितनी देर तक वह आगे लिखने के लिये शब्द तलाशती रही। फिर जो कुछ भी लिखा था उसे फाड़कर खिड़की से बाहर फेंक दिया। कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों को धीरे-धीरे नीचे सड़क तक पहुंचते वह देखती रही।

नीचे गैलरी में टेलिफोन की घंटी बजी।

वह आधी सीढ़ियां उतर चुकी थीं, जब उसके भाई ने आवाज़ दी, "जीत, तुम्हारा फ़ोन है।"

"कहो ?" जीत ने रिसीवर कान से लगाते हुए कहा।

"कल शाम को फ्री हो ?"

"क्या बात है ?"

"बात तो कुछ भी नहीं।"

"मैं तो हमेशा ही फ्री रहता हूं केवल आप ही ख़ाली नहीं होते आजकल।"

"कल शाम को चार बजे मोती महल आ सकोगी ?"

"आपने अपनी सहेली से पूछ लिया है क्या ? वह नाराज़ तो नहीं होगी ?"

"क्यों मज़ाक कर रही हो। कल शाम, याद रखना।"

"मैं नहीं जाऊंगी।" रिसीवर रखने के बाद जीत ने अपने आप से कहा।

"किस का फोन था ?" मां ने उसके चेहरे की तरफ देखकर पूछा।

जीत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वह सीढ़ियां चढ़ने लगी।

"अब खाना खाकर ही ऊपर जाना" मां बोली।

"मुझे भूख नहीं है।"

"हर तीसरे दिन इसकी भूख को पता नहीं क्या हो जाता है..."

जीत अपने कमरे में न जाकर सीधे ऊपर छत पर आ गई।

उसने आकाश की तरफ़ देखा। घनघोर घटाएं छाई हुई थीं। काले-काले बादल बरसने को तैयार थे। हवा जैसे सांस थामे खड़ी थी।

जीत को अपनी सांस भी कलेजे के नीचे कहीं डूबती प्रतीत हुई। शायद सीढ़ियां चढ़ने के कारण। उसने गहरी सांस भरी।

उसके हाथ-पैरों की तलियों से सेंक निकल रहा था।

वह चप्पल उतार कर नंगे पांव छत पर टहलने लगी। एकाएक उसे अपने छोटे-से सफ़ेद बालों वाले कुत्ते जिप्सी का ख्याल आया जोकि बगीचे में सांप के काटने से मर गया था।

पहले जब कभी उसे अपनी सांस घुटती प्रतीत होती थी, वह छत पर आ जाती थी, तब जिप्सी अपने आप ही उसके पीछे-पीछे आ जाता था।

आज जब वह कालिज से आई तो जिप्सी अपनी आखिरी सांसें गिन रहा था। गरदन एक तरफ लुढ़की पड़ी थी। मुंह से झाग निकल रही थी।

''जिप्सी ..'' जीत ने उसके पास बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे बुलाया।

जिप्सी ने मिचती हुई आंखों को पूरी तरह खोलकर उसकी तरफ देखा। जिप्सी ने अपनी सारी ताकत लगाकर गरदन उठायी और अगली टांगें भी हिलायीं जैसे उठने की कोशिश कर रहा हो, लेकिन वहीं पर गिर पड़ा और मर गया। उसकी आंखें अभी भी खुली थीं और उनकी कोरों पर पानी था।

''छोड़, इसको, मैं तुम्हें इससे भी बढ़िया कुत्ता ला दूंगा''. जीत के भाई ने उसका उतरा हुआ मुंह देखकर कहा।

''अवतार ने भी किसी दूसरी लड़की से जिस का नाम मनोरमा था. अपनी दोस्ती बढ़ा ली थी. यह सोचते हुए जीत ने दुबारा चप्पल पांवों में पहन ली।

''लेकिन उसने यह सब मुझे क्यों बताया? कहता था. ''तुम से मैं कुछ भी नहीं छिपाता। जहां मर्जी हो धक्के खाता घूमता रहे. मुझे क्या।'' सोचती हुई वह सीढ़ियां उतर आई।

नौकर रेडियो पर दूध का गिलास रख गया था। उसके देखते-ही-देखते खिड़की में से एक बिल्ली अन्दर आई। उसकी तरफ झांकती हुई मेज़ पर चढ़ गई और डरते-डरते दूध पीने लग गई। जीत चुपचाप उसे दूध पीते हुए देखती रही।

बहुत मज़े से दूध पीकर बिल्ली जिधर से आई थी उधर ही मुड़ गई। जीत ने अलमारी खोलकर सामने रखी किताब उठा ली। वह यूकियो मिशिमा के नाटकों का संकलन था। जो पृष्ठ खुला, वहां नव्वे पचानवें साल की एक बुढ़िया एक कवि से कह रही थी, ''मुझे खूबसूरत कहने वाले सभी लोग मर गए हैं। जो भी मुझे खूबसूरत कहता है वही मर जाता है। इसलिए तुम मत कहना कि मैं खूबसूरत हूं।''

जीत ने किताब बंद कर पंक्ति मन में दोहरायी, ''जो भी मुझे खूबसूरत कहता है वही मर जाता है।''

''आज जिप्सी मर गया है।'' जापानी नाटकों की नायिका के साथ जैसे उसने अपनी बात मिलायी।

''एक सुखजीत हुआ करता था . कई साल पहले। वह विलायत पढ़ने गया था वापिस नहीं आया। कुछ सपने मेरे पास छोड़ गया था। समझ नहीं आता कि उन सपनों का क्या करूं...।''

''एक मेरी सहेली थी किरन। वह करंट लगने से मर गई थी। मैं सोचती हूं क्या इतनी बड़ी दुनिया में करंट लगने से मरने के लिए वही बची थी।

''एक था रवि, जो कहता था कि मैं सुखजीत जैसा नहीं, मैं सदा तुम्हारे पास रहूंगा। वह फौज में भर्ती हो गया था और भारत-चीन युद्ध के समय से लापता है।

''हां, हां, मेरा एक बड़ा भाई भी है लेकिन भाभी उसको मुझ से मिलने-जुलने नहीं देती।

"और अवतार...मैं सोचती थी यहीं इसका घर है, नौकरी है, बाल-बच्चे हैं। मेरी खातिर न सही, उन की खातिर तो यहीं रहेगा। लेकिन वह..."

लेकिन जापानी नाटक की नायिका तो लोगों द्वारा पीकर फेंकी गई सिगरटों के टुकड़े गिन रही थी। एक और एक दो, दो और दो चार, एक और एक दो, दो और दो चार।' जीत की बात की तरफ जैसे उसका कोई ध्यान ही नहीं था।

कल के चार बजने में अभी सत्तरह घण्टे शेष थे, लेकिन जीत अवतार की बातें ले बैठी थी।

वक्त गुज़रने का उसे पता न चले, इस ख्याल से उसने नींद की गोलियां खाईं, गिलास से पानी पीया और पंखा तेज करके लेट गई। ट्यूबलाइट बुझने के बाद भी दोनों कोनों से जल-बुझ रही थी।

हालांकि वह नींद की गोलियां खाकर सोई थी, फिर भी सुबह मुंह अन्धेरे ही उसकी आंखें खुल गईं। शायद रात खाना न खाने के कारण, उसे बड़ी बेचैनी-सी महसूस हुई। लेकिन अभी तो सब सोये हुए थे, चाय भी नहीं मिल सकती थी।

उसकी इच्छा हुई बगीचे में जाकर ओस भरी घास पर नंगे पैर घूमे। इसी से शायद कुछ ठंडक महसूस हो। लेकिन तभी उसे याद आया कि बगीचे में कल जिप्सी को सांप ने काट खाया था।

'चलो, अच्छा होगा, छुट्टी मिलेगी", उसके अन्दर से जैसे किसी ने कहा।

"लेकिन आज चार बजे तो अवतार से मिलने जाना है।" उसके ज़िन्दा रहने के लिए जैसे बहुत बड़ी बात अभी बाकी थी।

दोपहर तक वह कालेज रही। कालेज जाते समय वह जो मुखौटा, अपने कपड़ों जैसा पहनकर जाती थी। वही उसके सारे काम करता था। कई बार उसे लगता, उसकी जगह जीने का काम भी वही करता है।

घर आई, तो एक चिट्ठी आई हुई थी। खोली, केवल एक लाइन लिखी थी, "मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"

अवतार की लिखावट वह पहचानती थी। विदेश की चिट्ठी लगती नहीं थी। कौन हो सकता है? उसे किसी का भी ध्यान नहीं आ रहा था।

"मुझे खूबसूरत कहने वाले सभी लोग मर चुके हैं..."एक और एक दो, दो और दो चार" जापानी नाटक की नायिका अभी भी जीत के ज़ेहन में सिगरटों के टुकड़े गिन रही थी।

दो बजे से साढ़े तीन बजे तक वह यही सोचती रही कि वह अवतार से मिलने जाए या नहीं। उसे लगा उसे नहीं जाना चाहिए।

लेकिन साढ़े तीन बजे उसने मुंह-हाथ धोया, साड़ी बदली, बाल संवारे, और मां को बिना बताए घर से बाहर आ गई।

जब वह 'मोती महल' पहुंची, अवतार गेट पर ही खड़ा था। उसे आया देख, वह मुस्कराया। पल-दो-पल जीत सब गिले-शिकवे भूल गई और जवाब में वह भी मुस्करा पड़ी।

"मेरा ख्याल था शायद तुम नहीं आओगी।"

"मुझे आना तो नहीं चाहिए था, लेकिन आ गई।"

"एक खाली केबिन में बैठकर उन्होंने चाय मंगवाई।

चाय बनाते हुए जीत ने एक बार भी अवतार की तरफ नहीं देखा।

चाय का कप जब जीत ने अवतार के आगे किया, उसने चाय पकड़ते हुए उसका हाथ भी पकड़ लिया।

जीत ने हड़बड़ाकर उसकी तरफ देखा और उसकी आंखें भर आईं।

"पगली", अवतार ने कहा और अपनी जेब में से रूमाल निकाल कर आंखें पोंछने के लिये उसे दिया।

"सुनाओ क्या हाल है तुम्हारी सहेली का।"

"ठीक है। दरअसल वह इतनी खराब औरत नहीं है जितनी लोग उसे समझते है।"

"आपको तो अच्छी लगेगी ही।"

"कई साल हुए उसका घर वाला किसी लड़की के साथ कहीं भाग गया। तुम्हारे जैसी तो मारे शरम के ही मर जाती। लेकिन इसे देखो, उस आदमी के मां-बाप को भी अपने साथ ही रखा हुआ है। नौकरी करके बच्चे भी पाल रही है और उस पर तुर्रा यह कि फिर भी सारा दिन हंसती रहती है।"

"आप तो वैसे भी हुए उसके अफसर।"

"नहीं, जैसे अन्धे व्यक्ति के कान ज्यादा काम करने लग जाते है, उसी तरह उसकी कुदरती भूख उसकी आंखों, उसके हाथों, उसके होंठों, उसके पैरों, उसके बालों में आ गई हैं। लोग वहीं से अन्दाजे लगाते हैं। अपनी आंखों, अपने बालों, अपने पैरों, बालों की झटकनों से बेखबर वह सोचती है कि वह दरवाज़े बंद करके घर के अन्दर बैठी है।"

"हां, हां बना लो उसके लिये ऐसा फलसफा। लेकिन मैं यहां तुमसे उसकी बातें करने नहीं आई।"

"लेकिन, वह तो बराबर तुम्हारा हाल-चाल पूछती रहती है।"

"मुझे तो वह जानती भी नहीं।"

"मैंने बताया था तुम्हारे बारे में।"

"क्या बताया था ?"

"यही कि तुम बहुत ज़ालिम हो ।"

जीत ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"दरअसल तुमने सचमुच कभी किसी को चाहा ही नहीं । नहीं तो, जिसे तुम सचमुच चाहो, उससे कुछ छुपाकर या बचाकर कैसे रख सकते हो ?"

"तुम मेरे बारे में, मुझसे ज्यादा जानते हो ।"

"वह भी क्या मुहब्बत हुई कि दूसरे को भूखे-प्यासे ही मार दो ।"

"कल हमारे घर एक ज्योतिषी आया था, कहता था रवि ज़िन्दा है और कहीं क़ैद है ।"

"ज्योतिषी ने अपने पैसे खरे करने के चक्कर में जो बात तुम्हें अच्छी लगती. वह कह दी । तुम खुद सोचो, कितने साल बीत चुके हैं । उसके तो ज़िन्दा होने पर भी शक है । अब सुखजीत को लो, मैं कह सकता हूं कि वह कभी वापिस नहीं आएगा । जिसने विदेश की ज़िन्दगी देख ली वह वापिस नहीं आता । वापिस आने के लिए यहां है ही क्या ?"

"ऐसे मत कहो ।"

"सच तो आखिर सच ही है । चाहे जैसे मर्ज़ी कहो ।"

"कोई ठण्डी चीज़ मंगवाओ पीने के लिए" जीत ने अपने माथे पर झलक आई पसीने की बूंदें पोंछते हुए कहा ।

अवतार ने घण्टी बजाई ।

"यदि तुम माइन्ड न करो तो मैं ड्रिंक्स मंगवा लूं ? मेरा भी दिल आज बहुत उदास है ।"

"मंगवा लो ।"

अवतार के लिए व्हिस्की और सोडा आ गया, जीत के लिए कोकाकोला ।

मज़ाक में अवतार ने थोड़ी व्हिस्की जीत के कोका कोला वाले गिलास में डाल दी ।

"क्या कर रहे हो " जीत ने माथे पर ज़रा-सा बल डालते हुए कहा ।

"मेरी कसम" कहते हुए अवतार ने गिलास जीत के हाथ में पकड़ा दिया ।

जीत दवाई की तरह उसे एक सांस में पी तो गई, लेकिन उसकी आंखों में पानी आ गया ।

"सुनिए, आपकी मनोरमा ड्रिन्कस भी करती है ?

"शेरदिल औरत है । इसमें बुरी बात भी क्या है, विदेशों में तो सब औरतें पीती हैं ।"

जीत कितने समय तक चुप बैठी रही ।

दो पैग पीने के बाद अवतार ने दरवाजे पर लगा पर्दा ठीक किया और जीत के पास आकर बोला, "बैठ जाऊं ?"

"बैठ जाओ" जीत ने थोड़ा सरकते हुए कहा।

"क्या बात है, अशुद्ध हो गई क्या ?" अवतार ने उससे सटकर बैठते हुए पूछा।

"अच्छी तुमने कोका कोला पिलाई है, अन्दर आग-सी लगने लगी है।"

"चलो, फिर तुम्हें आग को आग से बुझाने का तरीका बताऊं।" कहते हुए अवतार ने दोनों गिलासों में व्हिस्की डाली और बीच में बर्फ़ के टुकड़े डाल दिए।

"नहीं, मुझे यह नहीं चाहिये।" जीत ने कहा।

अवतार ने उसकी बगल में बाजू डालकर उसको आलिंगनबद्ध करते हुए कहा, "तुम्हें मेरी कसम लो।"

जीत ने एक ही सांस में गिलास खाली कर दिया।

"कुछ समय बाद उसे चक्कर आने शुरू हो गये। अवतार के सीने से जैसे सो सी गई।

"घर चलें ?" अवतार ने पूछा।

"नहीं". जीत ने लाल हुई आंखों से उसकी तरफ देखते हुए कहा।

"अच्छा फिर मैं अपनी उस सहेली मनोरमा को ले जाऊंगा।" अवतार ने ऐसे ही मजाक करते हुए कहा. साथ ही जीत का सिर अपने से थोड़ा-सा दूर हटा दिया।

"यदि आज मैं घर जाऊं और मुझे सुखजीत बैठा हुआ मिल जाए।" जीत ने जैसे अपने आप से कहा।

"यह भी कोई परी-कथा है कि बिलकुल मौके पर कोई शहज़ादा पहुंच जाएगा। अब तुम उसका ख्याल छोड़ दो। उसने तो कब का किसी मेम के साथ ब्याह कर लिया होगा। तुम भी ब्याह कर लो।"

"किसके साथ ?"

"किसी के भी साथ। यदि मेरा विवाह न हुआ होता तो मैं ज़रूर कर लेता।"

"मैंने रवि को भी सुखजीत के बारे में सब कुछ बता दिया था। आपको, रवि और सुखजीत, दोनों के बारे में।"

"इसीलिए तो मनोरमा के बारे में मैंने तुमसे कुछ नहीं छुपाया। वैसे छुपाने वाला कुछ था भी नहीं।"

"आपको सचमुच वह बहुत अच्छी लगती है ?"

"हां, दूसरी यह बात भी है कि मैं जानता हूं कि तुम एक-न-एक दिन मुझे छोड़ दोगी। मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी तो नहीं हैं। इस हार से बचने के लिए यह एक झूठा सहारा है।"

जीत ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह एकटक अवतार के मुंह की तरफ देखती रही।

"चलिए ?"

"हां।"

वे उठ खड़े हुए। बाहर हाल में बैठे लोगों की तरफ न देखते हुए अवतार होटल से बाहर आ गया। उसके पीछे आ रही जीत एक जगह गिरते-गिरते बची।

रास्ते में अवतार ने उस का हाथ दबाते हुए फिर पूछा, "घर चलोगी ?"

"कौन से घर ?"

"मेरे घर।"

"आपकी बीवी ?"

"वह बच्चों के साथ मायके गई हुई है।"

"आपकी वह सहेली आपके साथ आपके घर चली जाती है ?"

"हां ! वह तुम्हारी तरह मुझे बुरा व्यक्ति नहीं समझती।"

"बुरा आदमी तो मैं भी नहीं समझती। जानी, मुझे किसी चीज़ की समझ भी तो नहीं है।"

"अपने घर चल कर मैं सिर्फ यह देखना चाहता हूं कि तुम यदि मेरी होतीं तो मुझे कैसा महसूस होता।"

"अभी तुम्हारी नहीं ?"

"फिर ऐसा शक और संकोच क्यों ?"

"एक शर्त पर जा सकती हूं।"

"मुझे सौ शर्तें भी मंजूर हैं।"

'अपनी उस सहेली से बोलना छोड़ दोगे।"

"मैं कसम खाता हूं" कहते हुए अवतार ने कार अपने घर की तरफ मोड़ ली।

जीत ने मदमाती नज़रों से उसकी तरफ देखा।

वह मुस्करा पड़ा।

घर आ गया।

अवतार ने दुल्हन की तरह जीत का हाथ पकड़ कर उसे कार से उतारा। ताला खोलकर अवतार सीधा उसे अपने सोने वाले (बैडरूम) कमरे में ले गया।

O

बत्ती जली और बुझ गई।

उसको घर छोड़ने आ रहे अवतार ने उससे कहा, "मुझे पता नहीं था तुम्हारे अन्दर इतनी आग है और तुम मुझे इतना प्यार करती हो। मैं तुम्हारा शुक्रगुज़ार हूं। मैं समझता

था ..मैं समझता था ..अब तो मैं सचमुच की कसम खाकर कहता हूं कि मैं अपनी उस सहेली के साथ तो क्या किसी दूसरी औरत के साथ भी कभी बात नहीं करूंगा।''

जीत शायद कुछ भी सुन नहीं रही थी। उसने कुछ भी नहीं कहा।

अवतार उसे गेट पर ही छोड़कर वापिस चला गया। बगीचे में से निकलते हुए उसे रातरानी के फूलों की महक आई। लेकिन साथ ही उसे याद आया कि बगीचे में जिप्सी को सांप ने काट खाया था।

''कहां गई थी ? तुम्हारे पीछे से तुम्हारे लिए ट्रंककाल आई थी ?'' अन्दर आते ही उसके भाई ने कहा।

''कहां से ?''

''यह तो उसने बताया ही नहीं, मैंने पूछा भी था।''

''रिसीवर उठाकर ऐक्सचेंज से जीत ने पूछा, ''432 नंबर पर जो ट्रंककाल आई थी, वह कहां से थी ?''

''सॉरी मैडम, मैं तो अभी-अभी ड्यूटी पर आया हूं, मुझे नहीं मालूम।''

''विदेश से तो नहीं थी ?''

''सॉरी मुझे मालूम नहीं।''

''जीत ने लम्बी सांस भरी और रिसीवर रख दिया।''

''कहां गई थी ? ' उसकी मां ने छिपी खीझ के साथ पूछा।

''अवतार की तरफ'' कहते हुए वह सीढ़ियां चढ़ने लगी।

अवतार को घर में सब जानते थे। अवतार इज्ज़तदार आदमी था इसलिए जीत की मां को यह बहुत नाराज़ होने वाली बात नहीं लगी। वैसे भी जीत को वह अच्छी तरह जानती थी कि उसकी बेटी ऐसी-वैसी लड़की नहीं है।

सुबह मां जब चाय के लिए उसको उठाने गई तो वह मरी पड़ी थी।

शायद वह काफी रात तक जागती रही थी। कमरे की बत्ती अभी भी जल रही थी। पास में जापानी नाटकों की किताब खुली पड़ी थी। किताब में तस्वीर थी जिसमें नव्वे पचानवें साल की वृद्धा नायिका को खूबसूरत कहने वाला कवि मरा पड़ा था। उसके पास एक सिपाही खड़ा था। वृद्धा नायिका सिगरटों के टुकड़े गिन रही थी, ''एक और एक दो, दो और दो चार।''

''एक और एक दो, दो और दो चार।'' □

साक्षात्कार

शमशेर बहादुर सिंह से डॉ० देवव्रत जोशी की बातचीत

शमशेर बहादुर सिंह कहीं से भी कवि नहीं लगते। बात बोलेगी, वे नहीं। (उनकी एक प्रसिद्ध काव्य पंक्ति हैं—"बात बोलेगी, हम नहीं!")

वरिष्ठ प्रयोगवादी कवि और नई कविता के शलाका-पुरुष शमशेर जी से बातचीत के लिये बिना निश्चित और समय के पहुंचा था उनके पास।

खादी का कुर्ता, टेरीन का पेन्ट, बेतरतीब, बिखरे वाल, आँखों पर माइनस 22 का चश्मा। बुजुर्ग शमशेर में स्फूर्ति झलकती है। वे कहते हैं—' लिखा-पढ़ा नहीं जाता, आँखों में मोतियाबिन्द है।"

शमशेर मूलतः रोमेन्टिक कवि हैं। विद्रोह और रागात्मकता का अद्भुत सम्मिश्रण है उनका व्यक्तित्व और रचना-संचार। "अमन के गीत" (मुक्त छन्द की लम्बी, युद्ध-विरोधी कविता, जो 'हंस' के जुलाई 1948 के अंक में प्रकाशित हुई थी) का स्मरण दिलाने पर वे अतीत में खो गये कुछ देर वातावरण में एक चुप्पी।...

उनका जीवन हवा में उड़ते पत्ते सा नैसर्गिक; किन्तु खतरों से भरा जीवन रहा। कोई स्थान, कोई व्यक्ति यहां तक कि साहित्य की उनकी प्रिय विधा गज़ल तक उन्हें नहीं बांध सकी।

"गजलें तो अपने खूब लिखी हैं।" मैं चर्चा आरम्भ करता हूं।

"मेरा 'फर्स्ट फार्म उर्दू ही रहा। गज़लें लिखीं तो, पर बहुत कम।" वे संकोच सहित कहते हैं।

शमशेर जीवन-यापन के लिए कभी ड्राइंग-टीचर रहे, कभी किसी पत्रिका (रूपाभ, हंस, माया) आदि में सह-सम्पादकी करते रहे। वे कहते हैं— 'कोई दायित्व कभी रहा नहीं खास, इसलिए व्यवस्थित जीवन का अभ्यास नहीं रहा, न इसकी ज़रूरत समझी।"

पारिवारिक जीवन का ब्यौरा देने में उन्हें हिचक है। पत्नी का असामयिक निधन हो ही गया है। एक बेटी है।

मैंने उनसे व्यक्तिगत सवाल न करने का निर्णय किया। घूम-फिर कर बातचीत केन्द्रीय विषय साहित्य पर ही आकर रुकती थी।

इस बीच मेहमान नवाज़ शमशेर दो बार कमरे से उठकर अन्दर गए। उन्होंने अपने नौकर को पुचकार कर जगाया। मुझे पूछा —"चाय पिएंगे आप ? ......मैं तो गुनगुने पानी में हल्दी-चीनी मिलाकर पीता हूं। आँखों के लिए मुफ़ीद है। ......आप भी पीजिए।" सहज भाव से वे कहते हैं।

उनके साथ हल्दी पीकर तरोताज़ा महसूसता हूं।

बात नारी साहित्य से शुरू होकर कबीर, तुलसी, प्रेमचन्द, निराला तक जा पहुंची।

तब तक मैं बेतकल्लुफ हो चुका था पूरी तरह। मैंने पूछा शमशेर जी से—"दादा तुलसी मुझे बहुत कम कवि लगते हैं। आपकी क्या राय है ?"

वामपंथी कवि के तेवर अचानक बदले। एक सात्विक रोष उनकी भृकुटि पर तैरा क्षण-भर के लिये। "तुलसी ? पढ़ा है आपने तुलसी को ? ही इज़ द ग्रेटेस्ट पोएट ऑफ दी वर्ल्ड !" वे तमतमा कर कहते हैं।

मैं विस्मित हूं उनकी टिप्पणी सुनकर। (आज शाम ही शमशेर जी एक रामायणी का प्रवचन सुनने जाने की तैयारी कर रहे थे।)

"और फैज़ ? उन्होंने तो बहुत कम लिखा है। आप फैज़ को बहुत मानते हैं ?" मैंने जिज्ञासा प्रकट की।

शमशेर जी बोले—"मैं फैज़ का फैन हूं। फैज़ ने बेशक कम लिखा, लेकिन जो लिखा, कितना ऊंचा है। ......और फैज़ सिर्फ ऊंचे दर्जे के शायर नहीं थे, वे एक ज़िन्दा संस्था थे। ... खतरे मोल लेकर पत्रकारिता करने वाला, मानवता की भावना से लबरेज़, अफ्रो-शियाई लेखक-संघ को नया मंच देने वाला रचनाकार...। देखिये, समग्र व्यक्तित्व को लेकर ही किसी साहित्यकार का सम्यक और समग्र मूल्यांकन होना चाहिए।"

मेरा अगला प्रश्न था—"आज की कविता कल पुरानी हो जाएगी। ऐसा होता रहा है। हर कवि को नई ज़मीन तोड़ना पड़ती है। वह भाषा को नये संस्कार देता है, शब्दों को नए अर्थ। कलाएं तो सहोदराएं हैं—पेंटिंग, संगीत, कविता। ...फिर संगीत में उस्ताद जैसा गाए वही तान शिष्य भी छेड़े ऐसा क्यों ?"

शमशेर जी प्रसन्न हुए। बोले—"बहुत बढ़िया सवाल है आपका। कविता में परम्परा टूटती है, ठीक है। संगीत के क्षेत्र में भी हर गायक, अपने ढंग से जाने अनजाने कुछ नया तो अपनी तरफ से जोड़ता ही है। जोड़ना भी चाहिए। प्रयोग संगीत के क्षेत्र में भी हुए हैं। ......लेकिन उस्ताद और शागिर्द की इस परम्परा में हानि क्या है ?"

बातचीत के दौरान कई नये-पुराने साथियों का ज़िक्र वे करते रहे। निराला, प्रेमचन्द, अमृत लाल नागर, अज्ञेय, सुमन, श्यामू संन्यासी...।

कई पत्रिकाएं जिनसे वे जुड़े रहे। कई नाम—पन्त, प्रसाद, बच्चन…और उनके साथ बीते जीवन के स्वर्णिम दिन। "बच्चन ने तो मेरी अंग्रेज़ी में एम० ए० प्रीवियस की फीस भरी थी, देवव्रत!" वे स्मृतियों में खोई शमशेर जी की आँखें…।

बात बोल रही थी सचमुच शमशेर के सन्तुलित शब्दों में।

जाने कब, अध्यात्म पर चर्चा चल पड़ी। कबीर का बेबेस कथ्य, सन्तों की फक्कड़ असंगता और उनके कथ्य की प्रखरता…और फिर सूफी-सन्तों के क्रम में मौलाना फज़ल अहमद खां साहब का स्मरण।…

"मेरे पास मौलाना साहब की प्रामाणिक जीवनी है।" मैंने बताया।

"मैं पढ़ूंगा। ज़रूर कीजिये। मेरा फर्स्ट फॉर्म तो उर्दू ही है।" शमशेर जी उर्दू के मुरीद हैं। मैंने महसूसा और यह मुझे अच्छा भी लगा।

एक सन्तमना कवि-व्यक्तित्व से मिलकर, कृतार्थ भाव लिये, मैं लौट रहा था।

भीतर-बाहर से एक हिन्दी में कुछ ही कवि हैं—समग्र कवि—उनमें शमशेर सर्वोपरि हैं—निर्विवाद, असंग और अत्यन्त स्नेही तथा आदरणीय। □

निवेदन

कृपया पत्र व्यवहार
में ग्राहक-संख्या का
उल्लेख करना न भूलें।

किताबें

डोगरी-कश्मीरी कहानियां

सं० : डॉ० उषा व्यास

प्र० : जम्मू : जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ 1990

पृष्ठ : 114,

मूल्य : 25-50 रुपए

भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं के मुकाबले में कश्मीरी एवं डोगरी भाषाओं में कहानियां कम लिखी गई हैं। इसके कई कारण हैं। मुख्य कारण यह है कि दोनों भाषाओं को अपने ही जन्म प्रदेश-जम्मू एवं कश्मीर राज्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त नहीं हो सका। इन का प्रयोग सरकारी कामकाज (प्रशासन) में नहीं होता है। लोक संचार के सरकारी माध्यम (रेडियो, दूरदर्शन) एवं शिक्षा में इनका प्रयोग सीमित है। दोनों भाषाओं में फिर भी धीमी गति से ही सही मौलिक साहित्य सृजन विभिन्न विधाओं में हो रहा है जिनमें कथा साहित्य भी शामिल है।

कश्मीरी और डोगरी भाषाओं की बहुत ही कम कहानियों का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। ये अनुवाद चन्द पत्रिकाओं एवं संकलनों में प्रकाशित हुए हैं। जम्मू व कश्मीर में भाषा, कला और संस्कृति अकादमी राज्य की अन्य भाषाओं के साथ-साथ कश्मीरी और डोगरी साहित्य को प्रकाशित कराने में सहयोग देती है। प्रस्तुत पुस्तक भी अकादमी ने ही प्रकाशित की है।

समीक्षाधीन पुस्तक में कुल सोलह—आठ डोगरी और आठ कश्मीरी-कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया गया है। सम्पादक ने अपने आमुख में दोनों भाषाओं की कहानियों

की विशिष्टताओं का ज़िक्र किया है। ये सोलह कहानियां दोनों भाषाओं की शायद सर्वोत्तम कहानियां न होकर भी दोनों भाषाओं की कहानियों का प्रतिनिधि अवश्य करती हैं।

अधिकतर कहानियों में संबंधित भाषा-क्षेत्र के विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश, लोकमानस का बिम्ब एवं विषयगत वैविध्य परिलक्षित होता है। कहानियों के विषय अलग-अलग हैं। डोगरी कहानियों में भगवत् प्रसाद साठे की कहानी "हीरे का लौंग" आदर्श एवं निःस्वार्थ भावात्मक प्रेम को प्रकट करती है। नरेन्द्र खजूरिया की कहानी 'कास्तू का काला तीतर" क्षेत्रीय सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करती है जिसमें अन्ध विश्वासों के कारण सीधे-सादे मनुष्य बलि चढ़ जाते हैं। रामनाथ शास्त्री की कहानी "तीसरा अखण्ड-पाठ" एक सामयिक ज्वलन्त समस्या को प्रकट करती है जिसमें धन कमाने के लालच में तस्करी जैसे अवैध कार्य करने का जोखिम उठाया जाता है जो जानलेवा साबित हो जाता है। धर्मचन्द प्रशान्त की कहानी "किले का कैदी" एक क्षेत्रीय ऐतिहासिक परिवेश की कहानी है जिसमें उसूलों को वैयक्तिक विपदाओं पर प्रश्रय मिलता है। मदनमोहन की कहानो "पहाड़ी कौआ" एक पहाड़ी व्यक्ति की कहानी है जो पहाड़ों से दूर रह कर भी एक गरीब पहाड़ी बाला से हमदर्दी जताकर फिर पहाड़ लौटता है सब कुछ छोड़ कर। "आवाज़ें" वेद राही की सशक्त कहानी है जो हिन्द-पाक बंटवारे के फलस्वरूप एक असहाय बुढ़िया की मानसिक वेदना को प्रकट करती है जिसे अपने गांव वाले छोड़कर भाग गए हैं। नरसिंह देव जम्वाल की कहानी "नया ग्राहक" एक गरीब औरत की विवशता को दर्शाती है जो परिस्थितियों से मुकाबला करते हुए जीते जी सुलगती" है। बन्धु शर्मा की कहानी "प्लेटफार्म" अमीरी-गरीबी के आधार पर खड़े असफल प्रेम को दर्शाती है।

कश्मीरी कहानियों में अमीन कामिल की कहानी "लगन" वास्तव में उस दृढ़ मन की इच्छा शक्ति को प्रकट करती है जो प्रेम के मीठे बोल से जागृत होती है। जिससे एक बीमार प्रेमिका स्वस्थ हो जाती है मगर विधि की बिडम्बना से उस की बीमारी उसके प्रेमी को लग जाती है। अली मुहम्मद लोन की कहानी 'मनुष्य और मरीचिका" में एक बड़े बाबू का अपने अधीन कार्य करने वाली महिला से एक तरफा प्रेम का वर्णन है जो हवाई किले बनाता है और वास्तविकता से अनभिज्ञ रहता है। "बन्दी" बन्सी निर्दोष की सशक्त कहानी है। इसमें आशाओं के विपरीत एक बूढ़ा व्यक्ति कमाऊ बेटे के भरोसे न रह कर अपनी नौकरी बरकरार रखने पर विवश होता है। गुलामनबी शाकिर की कहानी "रोती ज़िन्दगी के ह्रास क्षण" पति-पत्नी के उस विश्वास-अविश्वास पर स्थित है जिसके बदलने में देर नहीं लगती। हरि कृष्ण कौल की कहानी "चोर" आज के समाज में व्याप्त बेईमानी, रिश्वत और मानसिकता का दृश्य प्रस्तुत करती है जिसके हम सभी शिकार और भागीदार हैं। रतनलाल शांत की कहानी "एक तिकोन यह भी" पति-पत्नी के प्यार, लड़ाई झगड़े और अलगाव की अटूट कड़ियां पिरोती है। हृदय कौल भारती की कहानी "बड़ी बस्ती का छोटा कमरा" आज की शहरी ज़िंदगी की मानसिक घुटन को नये बिम्बों द्वारा प्रस्तुत करती है। गुलाम रसूल सन्तोष की कहानी "सन्तान का दुख" पशुओं और मनुष्यों में व्याप्त मूलभूत सम्भावनाओं में सन्तान के प्रति मोह और इससे बिछुड़ने का दुख प्रकट करती है।

इस तरह कहानियों के विषय-वस्तु परम्परागत भी हैं और कुछ नवीन भी। विषय चाहे कोई हो. क्षेत्रीय जन समाज से जुड़े सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुत हुए हैं। अनुवाद की

भाषा-शैली के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है। अनुवादकों का भरसक प्रयत्न रहा है कि डोगरी और कश्मीरी भाषाओं में लिखित मौलिक कहानियों का अनुवाद मानक हिंदी में हो। अनुवादकों के प्रयत्न के बावजूद अनुवाद की भाषा में मौलिक भाषाओं की संरचनात्मक विशेषताएं झलकती हैं। डोगरी और कश्मीरी भाषा क्षेत्रों से सम्बन्धित विशिष्ट बिम्बों की परिकल्पना, लोकोक्तियों और मुहावरों का अनुवाद कहीं-कहीं पर कृत्रिम लगता है। हिंदी भाषा भाषी के लिए ये प्रयोग नये हैं। शैलीगत विशेषताएं कुछ स्थानों पर ध्यान आकृष्ट करती हैं। जैसे हरिकृष्ण कौल की कहानी "चोर" में नकारात्मक शब्द "नहीं" और क्रिया का प्रश्नात्मक बार-बार प्रयोग नहीं लगता? नहीं समझता, नहीं फटकारता? नहीं कहता? नहीं आता? नहीं बैठते? नहीं होता? आदि। कश्मीरी में इस शैली का प्रयोग जितना स्वाभाविक लगता है, हिन्दी में उतना ही कृत्रिम। कई स्थानों पर डोगरी या कश्मीरी का शब्दश: अनुवाद भी अखरता है। एकाध स्थान पर सांस्कृतिक शब्द-वाक्यों की टिप्पणी में व्याख्या की गई है। (जैसे शांत की कश्मीरी कहानी में "रस्सी बंटने" का)।

पुस्तक में यद्यपि मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियां हैं तथापि पुस्तक अच्छी है। इस पुस्तक के माध्यम से डोगरी और कश्मीरी कहानियां अधिक पाठकों तक पहुंच पाएंगी और डोगरी और कश्मीरी कहानियों के प्रति उन की रुचि जागृत होगी। पुस्तक के कुशल सम्पादन के लिये सम्पादक बधाई की पात्र हैं। □

> केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
> उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
>
> —मैथिलीशरण गुप्त

Regd. No. 28871/76 Bi-monthly Jan. 1992

SHEERAZA HINDI

A Publication of :
J & K Academy of art, culture and languages
Canal Road, Jammu.
Printed by : M/s Rohini Printers, Kot Kishan Chand Jalandhar City.